UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180161

UNIVERSAL
LIBRARY

अशोक

लेखक—

जयचन्द्र शास्त्री एम.ए.,

[एम. ओ. एल.]

काव्यतीर्थ विद्यावाचस्पति

जनवरी सन् १९२८ में

प्रथमावृत्ति २०००] [मूल्य १।)

ऐंग्लो ओरियण्टल प्रेस लाहौर में लालजीदास,

के प्रबन्ध से छपा ।

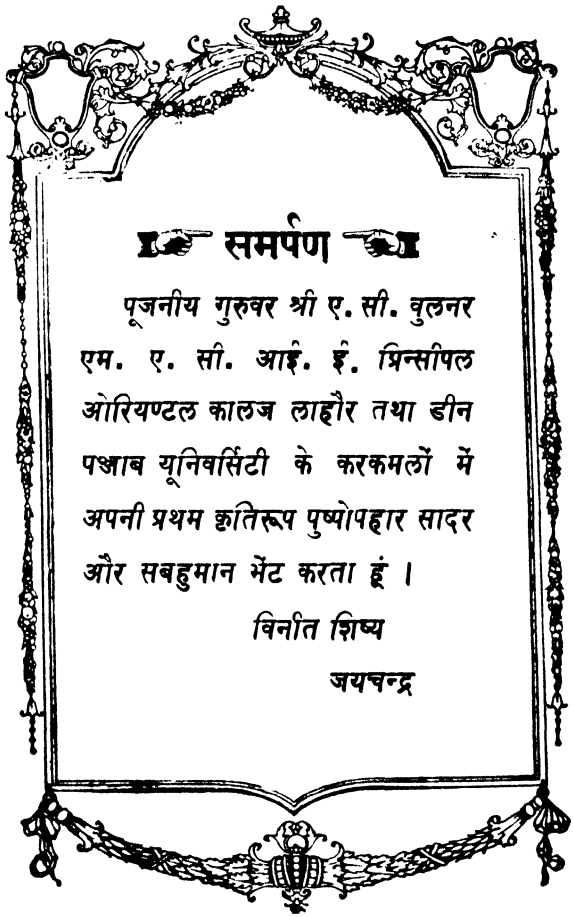

समर्पण

पूजनीय गुरुवर श्री ए. सी. वुलनर एम. ए. सी. आई. ई. प्रिन्सीपल ओरियण्टल कालज लाहौर तथा डीन पञ्जाब यूनिवर्सिटी के करकमलों में अपनी प्रथम कृतिरूप पुष्पोपहार सादर और सबहुमान भेंट करता हूं ।

विनीत शिष्य

जयचन्द्र

THE SOURCES.

1—Asoka by J. M. Macphail M. A. M. D.
(The Heritage of India Series)

2—Asoka by Vincent A. Smith. M. R. A S.
(Rulers of India Series)

3—Asoka by D. R. Bhandarkar M. A. Ph. D. etc.

4—Bhilsa Topes by Cunningham.

5—Edicts of Asoka by A. C. Woolner M. A. C. I. E.

6—Nāgarī Pracārini Patrikā.

7—Early History of India by V. A. Smith.

8—Buddhist India by Prof. Rhys Davids.

9—Encyclopædia of Religion and Ethics.

10—The Historical Volume (Vol. II) of the Imperial Gazetteer of India.

11—Archælogical Survey of India.

12—Cambridge History of India Vol. I.

13—Buddhist Philosophy in India and Ceylon by Prof. Keith.

14—Arthasāstra by Kautilya.

15—Ancient India by Rapson.

16—Asoka Prasastayas by Rāmāvatāra Sharma M. A. Sāhityācārya.

17—The Inscriptions of Piyadāsi by M. Senart.

18—Theatre of the Hindus by H. H. Wilson.

19—भारत के हिन्दू सम्राट्, चन्द्रराज भण्डारी।

20—अशोक (उपन्यास का अनुवाद) हरिभाऊ उपाध्याय।

धन्यवाद

ऊपर निर्दिष्ट पुस्तकों से हम ने सहायता ली है, इसलिए हम उन के लेखकों के आभारी हैं। भण्डारकर, मैकफ़ेल, स्मिथ की अशोक सम्बन्धी पुस्तकों तथा नागरी प्रचारिणी पत्रिका वा भारत के हिन्दू सम्राट् के अशोक सम्बन्धी अंशों से हम ने पूरी सहायता ली है, इसलिए उन सब लेखक महानुभावों को हम हृदय से धन्यवाद देते हैं। हां हम तो वास्तव में निमित्तमात्र हैं। इस पुस्तक के आविर्भाव का एकमात्र श्रेय है श्रीमान् डाक्टर लक्ष्मण स्वरूप एम. ए. डी. फ़िल (आक्सफ़ोर्ड) संस्कृत प्रोफ़ेसर ओरियण्टल कालज को, जिनकी लोकोत्तर उदारता तथा सत्परामर्श से ही इसका सम्पादन सम्भव हुआ है। अतः उक्त डाक्टर महोदय को हम शतशः हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

शुद्धिपत्र।

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ट
Fgypt	Egypt	7
walter	Walter	14
Releigh	Raleigh	14
outline	Outline	136

विषय सूची ।

		पृष्ठ
१	प्राक् कथन	१–३
२	मौर्यवंश	५–१९
३	नाम परिचय	२०–२४
४	हिन्दु सम्राट् अशोक	२५–३६
५	बौद्ध सम्राट् अशोक	३७–५१
६	अशोक के साम्राज्य का विस्तार ...	५२–५५
७	राज्य प्रबन्ध	५६–६७
८	सम्राट् अशोक के सिद्धान्त	६८–७१
९	सम्राट् अशोक के स्मारक	७२–८३
१०	शिलालेखों का हिन्दी अनुवाद ...	८४–११२
११	अशोक के समय का कलाकौशल ...	११३-११७
१२	धार्मिक तथा सामाजिक अवस्था ...	११८-१२१
१३	मौर्यवंश से सम्बद्ध मुख्य घटनाओं का नक्शा	१२३-१२८
१४	इतिहास में अशोक का स्थान ...	१२९-१३७
१५	अशोक की धार्मिकनीति का भारत पर प्रभाव	१३८-१४३
१६	उपसंहार	१४४-१४५

प्राक्कथन

ते धन्यास्ते महात्मान स्तेषां लोके स्थिरं यशः ।
यैर्निबद्धानि काव्यानि येवा काव्येषु कीर्तिताः ॥

भारतीय आकाश में असंख्य तारे रात्रि के समय दिखाई पड़ते हैं जिनमें कई एक अपनी लोकोत्तर ज्योति और विलक्षण आभा से विशेष देदीप्यमान होते हैं। परन्तु भारत के ऐतिहासिक आकाश में उज्ज्वल तारों की गणना अङ्गुलियों पर की जा सकती है ! इन्हीं उत्कृष्टतम ज्योतिःपुञ्जों में सम्राट् अशोक का स्थान बहुत ऊंचा है। उसका लौकिक वैभव जहां महान् था वहां आध्यात्मिक ऐश्वर्य भी बहुत बढ़ा चढ़ा था। क्योंकि एक तरफ़ उसका राज्य विस्तार महाप्रतापी अंग्रेज़ी सरकार के भारतीय राज्य से बड़ा था। और दूसरी ओर भूमण्डल का बहुत बड़ा भाग उसके धर्म प्रचार का क्षेत्र बना। एक तरफ़ वह ऐतिहासिक युग के आदिकाल पर अपनी प्रभा डालता है, दूसरी तरफ़ जो प्रामाणिक सामग्री वह अपने इतिहास के लिए स्वयं छोड़ गया है आज भी २२०० वर्षों के बाद वह अप्रतिम और अतुलनीय है।

धार्मिक उत्साह, राज्य संचालन प्रवीणता, और कार्य क्षमता के लिये सम्राट् अशोक अपना सानी नहीं रखता। मैकफेल (macphail) महोदय ने सम्राट् अशोक की तुलना हिमालय के उच्च शिखर से की है जो आसमान में सिर निकाले हुए सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित हो रहा है, परन्तु उसके मुकाबले पर समीपवर्ती नीची चोटियां बादल से ढकी हुई हों। ऐसे प्रतापी नरेश को भी अपनी ओट में छिपाने का (Mythology) देवमाला घोर प्रयास कर चुकी है, परन्तु (Princep) प्रिन्सेप, (Wilson) विल्सन (Burnouf) बर्नुफ़ (Kern) केर्ण, (Senart) सेनार और (Buhler) बूहलर आदि महानुभावों के परिश्रम से (Mythology की) वह घनघटा बहुत कुछ दूर हो चुकी है और प्रियदर्शी के प्यारे दर्शन दिनों दिन अधिकाधिक होने लगे हैं। नई नई गवेषणाओं से पूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ फ्रेंच, जर्मन, इंग्लिश तथा बंगला मराठी आदि भाषाओं में अशोक के सम्बन्ध में आये दिन निकलते रहते हैं। भारत की वास्तविक भारती हिन्दी भाषा का साहित्य भी सम्राट् अशोक के उज्ज्वल प्रकाश से प्रकाशित हो इसलिए इस पुस्तक के लिखने का उपक्रम हुआ है। वस्तुतः सम्राट् अशोक एक अत्यन्त उज्ज्वल तथा ऊंचा प्रकाश स्तम्भ

है जो भारत के गत दिनों के वैभव को जाज्वल्यमान करने के लिये अत्युपयोगी है। सम्राट् अशोक के गौरव और महत्ता का भारतीयों को सदैव अभिमान होना चाहिये। खेद की बात है कि प्रियदर्शी सम्राट् के सम्बन्ध में हिन्दी साहित्य अभी शून्यप्राय है। अशोक विषयक एक उपन्यास का भाषान्तर, उपाध्याय जी कृत, तथा चन्द्रराज जी के हिन्दू सम्राट् के छोटे से लेख, और नागरी प्रचारिणी पत्रिका में शिला लेखों वा धर्म लिपियों के सम्बन्धी अनुवादात्मक लेखों के सिवा हमें तो हिन्दी में आजतक कुछ भी पढ़ना नहीं मिला। इसलिए गवेषणा पूर्ण विदेशी भाषा के अशोक के इतिहास प्रतिपादक ग्रन्थों का पर्यालोचन कर के आधुनिक मत के दिग्दर्शन कराने तथा इसी उपाय से हिन्दी की सेवा करने का सङ्कल्प किया है। आशा है हिन्दी भाषा के प्रेमी तथा हिन्दी साहित्य के रसिकों का इससे कुछ मनोरञ्जन हो सकेगा। यदि ऐसा हुआ तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

मौर्यवंश ।

कुसुमस्तवकस्येव द्वेगतीस्तो मनास्विनः ।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य विनाशो विपिनेऽथवा ॥
न सुखं प्रार्थये नार्थमुदन्वद्वीचिचञ्चलम् ।
नानित्यताशनेस्त्रस्यन् विविक्तं ब्रह्मणः पदम् ॥
प्रमार्ष्टुमयशःपङ्क मिच्छेयं छद्मना कृतम् ।
वैधव्यतापितारातिवनिंतालोचनाम्बुभिः ॥ (भारवि)
क्रूरग्रहः सकेतुश्चन्द्रमसम्पूर्णमण्डलमिदानीम् ।
अभिभवितुमिच्छति बलाद् रक्षत्येनं तु बुधयोगः ॥

(विशाखदत्त)

आर्यों के इतिहास में कोसल देश के अधःपतन के अनन्तर मगध देश के भाग्यों का उदित होना प्रसिद्ध है । जिस समय का हम ज़िक्र कर रहे हैं मगध के सिंहासन पर महापद्म नन्द विराजमान था । वह बड़ा प्रतापी और वैभवशाली था । परन्तु प्रजा की भक्ति का पात्र न था ।

आचार्य चाणक्य के बुद्धिकौशल के प्रभाव से चन्द्रगुप्त ने ३२१ ई०पू० में मगध का सिंहासन शीघ्र ही हस्त-

गत कर लिया। उस समय अलक्षेन्द्र भारत भूमि से वापस जाचुका था। वह अभी फ़ारस में ही पहुंच पाया था कि उसका प्रतिनिधि (Phillipus) फ़िलिपस स्वतन्त्रता के अभिलाषी भारतवासियों की तलवार का शिकार बना। अलक्षेन्द्र ने दूसरा प्रतिनिधि नियत किया। परन्तु ३२३ ई० पू० में वह स्वयं मर गया। उसके प्रधान सेनापति मिलकर विजित प्रदेशों की बन्दरबांट में उधर व्यस्त हुए और भारतीय प्रदेशों के प्रबन्ध की चिन्ता में थे कि चन्द्रगुप्त ने अच्छा अवसर जानकर यूनानियों को भगा दिया और पञ्जाब का इलाका अपने राज्य में मिला लिया। कहते हैं कि महापद्मनन्द की सेना में ६००००० (छः लाख) आदमी थे। इतनी बड़ी सेना को विरमे में पाकर चन्द्रगुप्त ने पश्चिम से पूर्व समुद्र तथा दक्षिण में नर्मदा के पार तक अपना विस्तृत साम्राज्य स्थापित कर लिया। सम्भव है चोल, पाण्डय तथा केरल देशों को छोड़कर सारा दक्षिणापथ तथा पूर्व दक्षिण में कलिंग देश को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में चन्द्रगुप्त का एकच्छत्र राज्य रहा हो।

३२१ ई. पू. में अलक्षेन्द्र के साम्राज्य की दूसरी बार बांट हुई, और सेल्यूकस निकेटर (Seleucus Nikator)

उपनाम विजेता (Conqueror) को बाबल (Babylon) का इलाका मिला। छः वर्षों के बाद उसके विरोधी ऐण्टीगोनस (Antigonus) ने उसे मार भगाया और सेल्यूकस ने मिश्रदेश (Egypt) में शरण ली। तीन वर्षों के प्रवास के बाद वह बाबल को फिर पासका। और अब उसे अपने राज्य की नींव को दृढ करने तथा उसके विस्तृत करने की धुन समाई। बैक्टारिया के इलाके पर उसने आक्रमण किया और विजय पाइ। और विजयी सेना की बागें उसने भारतीय प्रदेशों के पुनः हस्तगत करने के लिये जिन्हें उसके मालिक अलक्षेन्द्र ने जीता था मोड़ीं। जिस मगध की सेना के डर से ही अलक्षेन्द्र की सेना सतलुज से वापस मुड़ गई थी उसी सेना के साथ चन्द्रगुप्त जैसे वीर नेता की अध्यक्षता में सेल्यूकस की सेना की मुठभेड़ हुई। थोड़ी ही देर में भारतीय सेना की वीरता का लोहा यूनानीदल को मानना पड़ा। निदान अलक्षेन्द्र द्वारा विजित सम्पूर्ण भारतीय इलाके को देकर तथा अपनी लड़की हेलन को भी चन्द्रगुप्त से ब्याह कर सेल्यूकस केवल पाञ्चसौ हाथियों को चन्द्रगुप्त से पाकर ही सन्तुष्ट हो लौट गया। अब चन्द्रगुप्त के साम्राज्य की सीमा उत्तर पश्चिम में हिन्दुकुश पर्वत तक जा पहुंची।

२४ वर्षों के अन्दर चन्द्रगुप्त ने जिस बृहत् साम्राज्य को स्थापित किया उसका विचार करके आज भी इतिहास के वेत्ता लोग आश्चर्य में डूबने लगते हैं और यावद् भूमण्डल की प्रधानतम राजनैतिक सफलताओं में उसे उत्कृष्ट स्थान देते हैं !

३०६ ई० पू० में सेल्यूकस ने अलक्षेन्द्र के अन्यान्य सेनापतियों के साथ राजा की उपाधि ग्रहण की, अर्थात् वह अपने २ इलाकों के राजा माने गए । सेल्यूकस भी सीरिया (Syria) का राजा कहलाने लगा ! सेल्यूकस ने (Megasthenese) मेगस्थनीज़ को चन्द्रगुप्त के दरबार में राजदूत बनाकर भेजा । वह चन्द्रगुप्त की राजधानी पाटलिपुत्र आधुनिक पटना बांकीपुर में रहा । चन्द्रगुप्त के दरबार, राजधानी, तथा अन्यान्य सममामयिक घटनाओं का वर्णन मेगस्थनीज़ ने किया है जिसके कुछ टूटे फूटे अंश ही ऐतिहासिक जगत् को इस समय मिल रहे हैं । चाणक्य के अर्थ शास्त्र का भी हाल ही में उद्धरण हुआ है जिसके पाठ से मेगस्थनीज़ के वर्णन किये हुए पाटलिपुत्र सम्बन्धी वैभव का अच्छा समर्थन होता है ।

मेगस्थनीज़ ने भारतीय सम्राट् का शासन सुव्यवस्थित और अत्यन्त प्रबल पाया । तथा पाटलिपुत्र भी

अत्यन्त सुदृढ़, सुरक्षित और पूर्णतया समृद्ध नगर उसे दिखाई दिया, जो भारत के सम्राट् की राजधानी बनने के योग्य ही था। पाटलिपुत्र के विस्तार के विषय में मेगस्थनीज़ लिखता है कि 'पाटलिपुत्र नगर एक बड़ा ही सुन्दर और सुदृढ शहर है। यह नगर लग भग ९ मील लंबा तथा डेढ़ मील चौड़ा है। नगर की रक्षा के निमित्त लकड़ी की एक प्राकार है जिसके ६४ फाटक और ५७० बुर्ज हैं। उसके बाद २०० गज़ चौड़ी और १५ गज़ गहरी एक परिखा है जो शोण नदी के जल से भरी रहती है'।

सम्राट् चन्द्रगुप्त के महल को देखकर मेगस्थनीज़ ने मुक्तकण्ठ से उसकी प्रशंसा की है। स्तम्भों पर की मुलम्मेदार सुनहरी बेलों और रूपहरी चिड़ियों की नक्काशी अद्भुत कारीगरी का नमूना था। महल के चारों ओर का बाग़ीचा बहुत विशाल तथा रंगबिरंगी मछलियों की किल्लोलों से सुरम्य सरोवर तथा वापियों से सुशोभित था। यूनानी राजदूत का कहना है कि यह महल अपने सौन्दर्य तथा वैभव की अपूर्वता के कारण अद्वितीय वा अनुपम था! राजधानी की जन संख्या ४००,००० थी। और सर्कारी ख़र्च पर ६०,००० पदाति, ३०,००० घुड़सवार, ८,००० हाथी तथा अनेक रथ, प्रत्येक समय में सन्नद्ध रहते थे।

हां युद्ध के उपस्थित होने पर ६००,००० आदमियों की सेना मरने मारने के लिये तय्यार हो सकती थी !

हमने जानबूझ कर इस समय तक न कुच्छ सम्राट् चन्द्रगुप्त के कुल के सम्बन्ध में लिखा है न मौर्यवंश के बारे में। परन्तु कुछ कहे विना गुज़ारा नहीं हो सकता। इसलिए इतिहास के सम्बन्ध में अपने इस समय तक के अत्यल्प ज्ञान से ही जो कुछ सूझता है पाठकों की भेंट करते हैं। इतिहास में मौर्यवंश की प्रतिष्ठा का श्रेय चन्द्रगुप्त को दिया जाता है। दूसरे शब्दों में सम्राट् चन्द्रगुप्त से पहले हम मौर्यवंश के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानते। इसलिए मौर्यवंश और चन्द्रगुप्त का इतना बड़ा गहरा सम्बन्ध है कि एक के विना दूसरे का विचार नहीं हो सकता।

इतिहास में चन्द्रगुप्त के कुल के सम्बन्ध में निम्नलिखित विचार मिलते हैं—

(१) मुद्राराक्षस नाटक के अनुसार चन्द्रगुप्त तात्कालिक राजा नन्द का सम्बन्धी था, तथा वह वृषल वा शूद्र था।

(२) विष्णुपुराण के टीकाकार के मत में चन्द्रगुप्त नन्द का लड़का था किन्तु रानी से नहीं, मुरा नाम की एक दासी से उसका जन्म हुआ था।

(३) महा पद्मनन्द स्वयं शूद्र था—और मुरा नाम की दासी से उत्पन्न होने के कारण चन्द्रगुप्त अति शूद्र था।

(४) महा पद्मनन्द का किसी नाई जाति की औरत से प्रेम हो जाने से चन्द्रगुप्त उत्पन्न हुआ।

(५) नन्द की रानी किसी नाई पर आसक्त हो गई और चन्द्रगुप्त उत्पन्न हो गया।

(६) नागोजी भट्ट ने मूर्तियों के बनाने वाले कारीगरों को मौर्य बतलाया है।

(७) बौद्धों के मत में चन्द्रगुप्त भी भगवान् बुद्ध के वंश में से था।

(८) कर्नल टाडने चन्द्रगुप्त को प्रमार वंशी क्षत्रिय माना है।

(९) कर्नल विल्फ़ोर्ड (Wilford) ने मौर्य का अर्थ किया है, नाई और दासी से उत्पन्न।

इन विप्रतिपत्तियों से यही मालूम होता है कि इतिहास को चन्द्रगुप्त के जन्म के सम्बन्ध में कुछ पता नहीं। इन्हें मौर्यवंश के सम्बन्ध में मौर्य शब्द की व्याख्यापरक ऐतिहासिकों की कल्पना मात्र समझना चाहिए। कहा जाता है कि चन्द्रगुप्त जैनी था अथवा जीवन काल की समाप्ति से दो वर्ष पूर्व जैनी हो गया था। यदि यह ठीक हो तो सम्भव है उसे नीच कुलोत्पन्न सिद्ध करने में

सनातनी ब्राह्मणों ने कुछ क्लेश उठाया हो। चन्द्रगुप्त से पहले मगध का राज्य शिशुनाग वंशिओं के हाथ में था। उन्होंने ब्राह्मणों के बढ़े चढ़े अधिकारों को बिल्कुल हटा दिया था और उन्हें दूसरे वर्णों के समान ही अपराध के बाद दण्ड देने का विधान किया था। इसलिये पुराणों में शिशुनागवंशी क्षत्रियों को भी ब्राह्मणों ने शूद्र ही माना है। पुराणों में उनके लिये शब्द है व्रात्य, जिस का मतलब उस द्विजसे होता है जिसने द्विजोचित कर्त्तव्य कर्मों का त्याग कर दिया हो। ब्राह्मण देवताओं को दूसरों के समान समझने से शिशुन ग वंशी क्षत्रियों को व्रात्य कहलाना पड़ा। शायद चन्द्रगुप्त को शूद्र का फ़तवा ब्राह्मणों ने इसी लिए दिया हो कि उसने भी शिशुनाग वंशी राजाओं की पद्धति का अनुसरण करते हुए ब्राह्मणों के दर्जे में विशेषता न रखी। तथा बुद्ध भगवान् के वंशज होना रूप बौद्धों का ख्याल भी शायद सम्राट् अशोक के पुण्य प्रताप और सर्वप्रियता का फल हो तात्विक न हो। हमारे विचार में चन्द्रगुप्त का नीच वा अतिनीच कुलोत्पन्न होना सरासर ग़लत है। क्योंकि यदि ब्राह्मण चाणक्य ने शूद्र नन्द को राज्य भ्रष्ट किया तथा मरवा डाला तो अतिशूद्र चन्द्रगुप्त को उसने मगध का सिंहासन क्यों

दिया था? यदि जनता शूद्र नन्द से प्रसन्न न थी तो अति शूद्र चन्द्रगुप्त से कैसे सन्तुष्ट हो सकती थी?

परन्तु चन्द्रगुप्त का सफलता पूर्वक बड़ी शान्ति से चौबीस वर्ष राज्य करना स्वयं इतिहास बतला रहा है। सच पूछें तो इतिहास को सम्राट् चन्द्रगुप्त के सम्बन्ध में निश्चयात्मक ज्ञान बहुत ही थोड़ा है। अभी तक यही निर्विवाद रूप से सिद्ध नहीं हुआ कि चन्द्रगुप्त ३१५ ई. पू. में सिंहासनासीन हुआ था कि ३२१ ई. पू. में वा ३२२ ई. पू. में वा ३२६ ई. पू. में। अभी यह भी भली भाँति पता नहीं चला कि अलक्षेन्द्र के यहां आने के दिनों में प्राच्यों का प्रतापी राजा (Xandramese) चन्द्रमस् कौन था, यही चन्द्रगुप्त वा कोई दूसरा? अभी तक यह भी विवादास्पद ही है कि मेगस्थनीज़ आदि ग्रीक लेखकों द्वारा वर्णित सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य है वा उसी नाम का गुप्तवंशी सम्राट्। जब इतनी अड़चनें हों तो जो कुछ ज्ञान और अज्ञान के मिश्रण से आधार सहित तथा आधार रहित कल्पनाओं को मिलाकर जो एक मन्तव्य स्थिर कर लिया गया हो यही इतिहास का लक्षण सम्राट् चन्द्रगुप्त के सम्बन्ध में समझना चाहिये। इतिहास के प्रसिद्ध आचार्य (Carlyle) कार्लाइल महो-

दय को इतिहास की तात्त्विकता पर कितनी आस्था थी वह सर वाल्टर रैले (Sir walter Releigh) के जेलखाने की खिड़की से आंखों के सामने होती हुई घटना के सम्बन्ध में भिन्न २ द्रष्टाओं के भिन्न २ मत वाले उल्लेख से अत्यन्त सुन्दर रूप में प्रकट होती है। सर वाल्टर रैले के समक्ष नीचे बाज़ार में दो आदमियों में झगड़ा होगया। वह सब कुछ देखते हुए (क) को अपराधी समझ रहा था। किन्तु एक और दर्शक जो नीचे घटनास्थल पर मौजूद था (ख) को अपराधी ठहराता था। महात्मा कार्लाइल का कथन है कि जब प्रत्यक्ष में इतनी गोलमाल हो सकती है तो परोक्ष की तात्त्विकता में कितनी आस्था रखी जा सकती है। अस्तु! आज २२०० वर्षों के पर्दे को हटाकर सब समाचारों को ठीक २ जान सकने की क्षमता किसी भी मनुष्य में नहीं है। जो थोड़ी बहुत झूठी और सच्ची सामग्री उपस्थित है उसी पर एक मात्र निर्भर करना होगा। उस यत्किंचित्सामग्री का आलम्बन करके तर्क के बल पर ऐतिहासिक महल को खड़ा करना है। इस लिये विशेष न कह कर हम तो उन लोगों को कृतघ्न देशद्रोही और अन्यायी समझते हैं जो थोड़े बहुत मन्तव्यों के भेद भाव को दिल में झूठ वा सच

समझ कर सम्राट् चन्द्रगुप्त को नीचकुलोत्पन्न बताते हुए जनता की दृष्टि में उसे गिराने का गन्दा यत्न करते हैं। हमारे विचार में सम्राट् चन्द्रगुप्त ने भारत माता की बड़े आड़े वक्त में सेवा की थी। यवनों के अत्याचारों से भारत माता का पिण्ड छुड़ाया था। यवनपददलित आर्यजाति को फिर से स्वतन्त्र करके गौरवान्वित किया था। भारत की बिखरी हुई शक्तियों को एकत्र करके आर्य सभ्यता तथा आर्यावर्त्त के मस्तक को उन्नत किया था ऐसे पुण्यश्लोकी सम्राट् का हमें अभिमान होना चाहिये। उसे प्रातःस्मरणीय गिने मिने अपने महापुरुषों की पंक्ति में बिठलाना चाहिए न कि उन्हें झूठमूठ नीच कुलोत्पन्न सिद्ध करने का यत्न करना चाहिये। सच तो यह है कि सम्राट् चन्द्रगुप्त समान पराक्रमी, तेजस्वी, नीतिनिपुण वीर पुरुष को जन्म देने वाला कुल यदि नीच भी होता तो उनको जन्म देकर सर्वोत्तम दर्जा पाने वाला होना चाहिए। परन्तु जब इतिहास को इस विषय में सचाई का पता ही नहीं उस अवस्था में किसी महापुरुष को नीच बताना घोर अन्याय और अक्षम्य अत्याचार है। अस्तु! जहां इतिहास की पहुंच नहीं वहां शब्दशास्त्र की शरण लेनी पड़ती है।

इतिहास जिन कोणों में प्रकाश नहीं डाल सकता उनको प्रकाशित करने के लिए शब्दशास्त्र का बटन दबाना पड़ता है। और शब्दशास्त्र के आधार पर हम कह सकते हैं कि सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्यवंश का प्रवर्त्तक ही न था। केवल उस वंश का चन्द्रमा था, उसे चमकाने वाला सितारा तथा उज्वल करने वाला हीरा था। मौर्यवंश की नींव डालने वाला वह हरगिज़ न था। पाणिनि ने मुर शब्द को कुर्वादि गण में पढ़ा है और अष्टाध्यायी के 'कुर्वादिभ्योण्यः –(४.१. १५१) सूत्र से अपत्य अर्थ में ण्य प्रत्यय कर के 'मौर्य' शब्द सिद्ध किया है। तथा 'शाक' शब्द से इसी सूत्र से अपत्य अर्थ में ण्य प्रत्यय करने से 'शाक्य' शब्द भी बनाया है। मौर्यों और शाक्यों का पारस्परिक सम्बन्ध इससे सिद्ध हो सके वा न हो सके हमें इसकी परवाह नहीं। हमारा मतलब यही है कि पाणिनि मुनि मौर्य शब्द को मुर से सिद्ध करते हैं मुरा से नहीं। यदि मुरा स्त्री के कारण मौर्यवंश चलता तो मौर्य न कहलाकर 'मौरेय' कहलाता, जैसे गंगा का लड़का गांगेय, विनता का वैनतेय, वैसे मुरा का लड़का मौरेय होता। पाणिनि के सूत्र जो ठहरे–'स्त्रीभ्योढक्'–(४.१. १२०) 'द्व्यचः,–(४.१. १२१)। परन्तु चन्द्रगुप्त को मौरेय कोई नहीं

लिखता, सभी मौर्य ही लिखते हैं, जिससे यह स्पष्ट है कि 'मौर्य' शब्द का मूल 'मुर' आदमी था न कि मुरा नाम की कोई स्त्री। मुर का लड़का मौर्य कहलाता है उसके वंश के सभी मौर्य कहलावेंगे। इसलिए पाणिनि के साक्ष्य पर हम यह कह सकते हैं कि मौर्यवंश उस से भी पहले मौजूद था। दूसरे शब्दों में मौर्यवंश का प्रवर्त्तक चन्द्रगुप्त न था प्रत्युत उसका प्रवर्त्तक मुर था जो पाणिनि से भी पहले हो गुज़रा था।

रही नागेश की प्रतिमा बनाने वाले शिल्पी मौर्यों की बात, उसके विषय में यहां पर विशेष कुच्छ न कह कर तथा दूसरे अवसर पर किसी लेख में विस्तार पूर्वक विवेचन करने के अभिप्राय से हम इतना ही कहना उचित समझते हैं कि उसने मौर्य शब्द का जो अर्थ किया है वह कोषों में न होने पर भी सम्भव है कि उसके समय में प्रसिद्ध हो। हां 'जीविकार्थे चापण्ये' (अष्टा० ५. ३. ९९) सूत्र के भाष्य में महाभाष्यकार के 'मौर्यैर्हिरण्यार्थिभिरर्चाः प्रकल्पिताः' इस वाक्य के ऐतिहासिक अंश को वह नहीं समझा। क्योंकि ऐतिहासिक शिक्षा तो नागेश ने पायी ही न थी। वह व्याकरण का आचार्य था इतिहास का पण्डित न था। उससे बहुत पहले मौर्यों

का इतिहास लुप्त हो चुका था। तथा अशोक के शिला लेखों को उस समय कौन समझता था। ऐसी अवस्था में ऐतिहासिक अंश के समझने में भूल हो जाने में आश्चर्य ही क्या है। हां सम्भव है नागेश के समय में कौटिल्य का अर्थ शास्त्र भी लुप्त हो चुका हो जिसके 'यात्रा समाजाभ्यामुपजीवेत्'—वाक्य से महाभाष्य के वाक्य पर प्रकाश डाला जा सकता। सच तो यह है कि मौर्य-शिल्प अनोखा था—अपूर्व था, अद्भुत था। मौर्य राजाओं की प्रोत्साहना से वह दृष्टि गोचर हुआ इस लिये उस शिल्प का नाम मौर्य शिल्प पड़ा। आज भी पत्थरों पर की पालिश को मौर्य पालिश कहा जाता है। कालान्तर में उस शिल्प के व्यवसायी लोगों को—पत्थर की सुन्दर मूर्ति बनाने वालों को—मौर्य नाम दे दिया गया होगा। परन्तु मौर्य क्षत्रिय थे, राजा थे, इस में किसी को एतराज़ करने की गुंजाइश नहीं।

१८७४ विक्रमी संवत् के हस्तलिखित महाभाष्य का पता मिला है। जिसमें कैयट का प्रदीप मौजूद है। उसके कोणे में लेखक ने लिख रखा है 'प्रतिमाशिल्पवंतो मौर्या इति विवरणकाराः'। विवरणकार से मतलब नागेश भट्ट से है। परन्तु आगे साथ ही लिख दिया है कि

'क्षत्रियविशेषेषु तु प्रसिद्धाः'।

२४ वर्ष तक आनन्द पूर्वक राज्य करने के बाद चन्द्रगुप्त की राज्यश्री ने उसके पुत्र बिन्दुसार अमित्रघात को अपना कृपापात्र बनाया। पिता के दिए हुए महा-विस्तृत तथा विशाल साम्राज्य को बिन्दुसार ने सुरक्षित रखते हुए २५ वर्षों तक उसका उपभोग किया। इसके दरबार में सीरिया के राजा का भेजा हुआ राजदूत रहा जिसका नाम (Deimachos) डीमेकास था।

२८० ई० पू० में ७८ वर्ष की आयु में सेल्यूकस मारा गया, और सीरिया के राजसिंहासन पर उसका लड़का (Antiochus Soter) ऐण्टिओकस सोटेर बैठा। सेल्यूकस की मृत्यु के पश्चात् अर्थात् २७४ ई० पू० में बिन्दु-सार के लड़के तथा मौर्यवंश के तीसरे राजा अशोकवर्धन ने पाटलिपुत्र की राजगद्दी पर विराजमान हो कर मौर्य-साम्राज्य की बागडोर को अपने हाथों में लिया।

नाम परिचय ।

कः खलु प्रणयिनि प्रियंवदे मत्सरी भवति माद्विधे जने ।

(हरदत्तः)

सम्राट् अशोक के मुख्य परिचायक उसके शिलालेख हैं जिनका वर्णन हम आगे चलकर उचित विस्तार से करेंगे। इन शिला लेखों में सम्राट् का परिचय 'पियदासि' के नाम से ही किया गया है । जिसका संस्कृतरूप 'प्रियदर्शी' होता है । सिंहलद्वीपवासी बौद्धों के 'दीपवंश' आदि ग्रन्थों में 'पियदासि' के अतिरिक्त 'पियदस्सन' भी पाया जाता है । यद्यपि दोनों शब्द समानार्थक हैं तथापि पहले शब्द से प्यारा देखने वाला अर्थात् हितचिन्तक वा मङ्गलाभिलाषी रूप अर्थ का विशेष रूप से बोध होता है । तथा दूसरे से 'प्यारा दिखाई देने वाला' रूप अर्थ प्रतीत होता है । 'पियदासि', 'पियदस्सी' वा 'पियदस्सन' आदि शब्दों का प्रयोग सम्मानार्थक किया जाता था इस लिये इन शब्दों को उपनाम वा विरुद के तौर पर समझना चाहिये । मौर्यवंश के प्रवर्त्तक चन्द्रगुप्त १म के नाम के साथ भी 'प्रियदर्शन' शब्द का प्रयोग मिलता है । वह सम्राट् चन्द्रगुप्त के नाम से विशेष रूप से प्रसिद्ध है इस लिये 'प्रियदर्शन' उसके उपनाम के समझने में किसी को कठिनता

प्रतीत नहीं होती। परन्तु सम्राट् अशोक के शिलालेखों में सर्वत्र 'प्रियदासि' शब्द का ही व्यवहार होने से उसका 'अशोक' के साथ सम्बन्ध जानना शिलालेखों के प्रथम पाठक Princep (प्रिन्सेप) साहब के लिये अत्यन्त कठिन हुआ।

आज से पचहत्तर वर्ष पूर्व उक्त साहब यह न जान सके कि 'पियदासि' कौन था, वह किस वंश का था, तथा वह कब हुआ था। 'पियदासि' से सम्राट् अशोक का बोध सबसे पहले (Turnour) टरनोर साहब को हुआ। उक्त महोदय सिंहल द्वीप में सिविलियन थे तथा पाली भाषा के अच्छे ज्ञाता थे। आपने 'दीपवंश' के आधार पर यह दर्शाया कि 'पियदासि' वा 'पियदस्सन' सम्राट् अशोक के लिये व्यवहृत किये गये थे। यद्यपि तभी से फिर किसी को इस विषय में सन्देह नहीं हुआ। तथापि निश्चित परिचय अभी हाल में एक शिलालेख से ही हुआ है। यह शिलालेख निज़ाम के राज्यान्तर्गत शोलापुर ज़िले के मस्की नामक स्थान में उपलब्ध हुआ है। इसे छोटे शिलालेखों में से प्रथम लेख की छटी प्रति समझना चाहिये। इसकी पहली ही पंक्ति में अशोक का नाम स्पष्टतया पाया जाता है। अतएव यह तो निर्विवाद सिद्ध ही होचुका सम-

झना चाहिये कि 'पियदासि' आदि शब्द सम्राट् अशोक के लिये ही व्यवहार में लाये गये है ! नाम के स्थान में उपनाम का व्यवहार कोई अनोखी बात नहीं। ऐसा रिवाज है ही। राष्ट्रकूट वंशी राजा गोविन्द तृतीय के पुत्र राजा मान्यखेट का उल्लेख सर्वत्र उसके उपनाम 'अमोघवर्ष' से ही सभी जगह मिलता है। सम्राट् अशोक का तो वास्तविक नाम से भी कम से कम एक बार तो उल्लेख मिला है। *इसे ही ग़नीमत समझना चाहिये।*

सम्राट् का शुभ नाम अशोकवर्धन था। किन्तु शिलालेख अनेक प्रकार से उसका बोध कराते हैं। कहीं प्रियदर्शी, कहीं प्रियदर्शी राजा, कहीं देवानां प्रिय राजा, कहीं देवानां प्रिय प्रियदर्शी और कहीं केवल देवानां प्रिय का प्रयोग मिलता है। इसका अर्थ है 'देवताओं का प्यारा'। आजकल 'देवानांप्रिय' का अर्थ भले ही मूर्ख लिया जाए, किन्तु बौद्धों ने इसे अच्छे अर्थों में ही प्रयुक्त किया है। पाणिनि के समय देवानां और प्रिय यह दो पद असमस्त थे। कात्यायन के समय में यह समस्त पद माना गया और मूर्ख अर्थ में व्यवहृत होने लगा तभी तो वार्त्तिक बनी 'देवानां प्रिय इति च मूर्खे'। परन्तु भाष्यकार पतञ्जलि बौद्धों के समय के हैं, और बौद्धों ने

इस समस्त पद को सम्मानार्थक व्यवहृत किया था। इस लिये पतञ्जलि को वार्त्तिक का मूर्ख अंश छोड़ देना पड़ा। बौद्धों के हासके समय में शङ्कराचार्य आदि ने इस समस्तपद को फिर मूर्ख अर्थ में ही वर्तना शुरू किया। आज भी इसका अर्थ मूर्ख ही लिया जाता है किन्तु बौद्धों को यह शब्द बड़ा प्यारा है। स्वयं समाट् अशोक को यह शब्द बहुत प्यारा था ऐसा प्रतीत होता है। उस समय में सम्मान के द्योतन का यह शब्द सर्वोत्तम साधन समझा जाता रहा है। पतञ्जलि ने भी 'भवत्,' 'दीर्घायु,' 'आयुष्मत्' शब्दों के साथ देवानांप्रिय शब्द का पाठ किया है। अशोक के शिला लेखों में अनेक स्थलों पर 'राजा' के स्थान में 'देवानाम्प्रिय' का प्रयोग मिलता है। इस लिये उसके शिला लेखों तथा समय म इन दोनों पदों को सम्मानार्थक तथा समानार्थक ही समझना चाहिये। यही नहीं। अशोक के शिला लेखों में राजाधिराज, महाराज आदि पदों का कहीं उल्लेख ही नहीं। केवल 'राजा' वा 'देवानाम्प्रिय' का ही उल्लेख मिलता है। और जब उसके विस्तृत साम्राज्य का विचार हम करते हैं जो अंग्रेज़ी सर्कार के भारतीय राज्य से भी कहीं बड़ा था, तो 'राजा' तथा 'देवानाम्प्रिय' शब्दों के आन्तरिक

गौरवं को समझने का अवसर मिलता है। इस लिये यह निर्विवाद सिद्ध है कि एक समय में 'देवानाम्प्रिय' शब्द अत्यन्त गौरव गर्भित सम्मान का द्योतक रहा था। सिंहल द्वीप के राजा तिष्य के लिये भी जो अशोक का समकालिक था—दीपवंश 'देवानाप्रियं' शब्द का ही प्रयोग करता है। और बहुधा 'राजा' के पर्याय रूप में इसे व्यवहृत करता है। प्राचीन लेख सङ्ग्रहों में अनेक स्थलों पर देवानाम्प्रिय शब्द 'राजा' का पर्याय-वाचक माना गया है। नागार्जुनी पहाड़ी गुफा के शिलालेख में अशोक के पोते दशरथ के लिये, तथा सिंहल द्वीप के वंकनासिक तिष्य, गजबाहुक गामिनी, महल्लनाग आदि अनेक राजाओं के लिये 'देवानाम्प्रिय' का व्यवहार मिलता है। अतः दोहज़ार वर्ष पूर्व इस पद का मांगलिक तथा सम्मानार्थक प्रयोग सर्व सम्मत प्रतीत होता है।

[२५]

हिन्दु सम्राट् अशोक ।

स्थितिं नो रे दध्याः क्षणमपि मन्दान्धेक्षण सखे ।
गजश्रेणीनाथ त्वमिह जटिलायां वनभुवि ।
असौ कुम्भिभ्रान्त्या खरनखरविद्रावितमहा—
गुरुग्रावग्रामः स्वपिति गिरिगर्भे हरिपतिः ।

(जगन्नाथ)

सम्राट् बिन्दुसार के राजत्वकाल में राजकुमार अशोक पहले तक्षशिला में वाइसराय रहा जो पञ्जाब, काश्मीर बलोचस्तान तथा अफ़गानस्थान पर शासन करने के लिये केन्द्रस्थान था । पिता की मृत्यु के समय अशोक वर्धन उज्जैनी का वाइसराय था । सिंहलद्वीप वालों के दीपवंश के अनुसार अशोक को मगध के राजसिंहासन पर कब्ज़ा करने के लिये भारी खून ख़राबा करना पड़ा, परन्तु आजकल के ऐतिहासिकों का मत है कि अपने ९९ भाइयों के बध के बाद अशोक की गद्दी पाने की बात ग़लत है । क्योंकि अशोक के शिलालेखों से उसके भाई बहिनों का उसके राजत्वकाल के मध्यभाग तक विद्यमान रहना सिद्ध हो रहा है । दीपवंश के लेख में भी छोटे भाई तिष्य का न मारना स्वीकार किया गया है । सम्भव

है कि राजगद्दी पाने के लिये अशोक को थोड़ा बहुत उपद्रव करना पड़ा हो। क्योंकि इतिहासकारों के मत के अनुसार अशोकवर्धन विन्दुसार का कनिष्ठपुत्र था। बड़े भाइयों के रहते हुए वह सिंहासन पर किस तरह आरूढ हो सकता था। यह हो सकता है कि अशोक के दूसरे भाई सुदूरवर्ती प्रान्तों में उस समय नियुक्त हों जब कि उनके पिता का देहान्त हुआ। और अशोक उज्जैनी में वाइसराय होने के कारण तथा शक्तिशाली होने से मगध के राज्य पर कब्ज़ा पासका हो। जो भी हो। २७४ ई० पू० में अशोकवर्धन भारत का सम्राट् हुआ। इस में सन्देह नहीं कि अशोक की टक्कर का सम्राट् भारत के इतिहास में ही नहीं दुनियां के इतिहास में भी मिलना मुश्किल है। उस की कर्मण्यता, उसका प्रजाहितचिन्तन, उसकी उद्योग-शीलता, उसकी प्रबन्धशक्ति, और उसका सदाचार सभी अत्यन्त प्रशंसनीय थे। प्रसिद्ध है कि अशोक का राज्या-भिषेक राजगद्दी के हस्तगत करने के ५ वर्ष बाद अर्थात् २६९ ई० पू० में हुआ। परन्तु डाक्टर भण्डारकर के मत में राजगद्दी पाने और अभिषेक होने में ५ वर्षों का अन्तर मानना अन्याय्य है। उनका कथन है कि ९९ भाइयों को मारकर गद्दी पाने की बात जिस प्रकार रद्द

हुई समझी जाती है वैसे ही इस अन्तर को भी रद्द ही कर देना चाहिये। जो भी हो अशोक समाट् अपने शिलालेखों में वर्षगणना अपने अभिषेककाल से ही करता है, जो उचित है।

अभिषेक काल की प्रत्येक वर्ष गांठ पर वह तमाम कैदियों को जेलख़ानों से छुट्टी दे दिया करता था। अशोक के शिलालेख उसके राजत्वकाल के पहले वर्षों के प्राइवेट और पब्लिक जीवन पर भी थोड़ा बहुत प्रकाश डालते हैं। ऊपर कहा गया है कि अशोक की कई बहिनें और भाई थे। शिलालेखों से पता लगता है कि कम से कम १३ वर्षों तक अशोक के भाई तथा बहिनें पाटलिपुत्र तथा साम्राज्य के दूसरे प्रधान नगरों में विद्यमान थीं। अशोक की कम से कम दो रानियों का पता शिलालेखों से मिलता है। सम्भव है उसकी और भी रानियां हों; तथा विवाहिता स्त्रियों के अतिरिक्त भी उसकी स्त्रियां न केवल पाटलिपुत्र में ही प्रत्युत दूसरे नगरों में भी रही हों। उस की एक रानी का नाम 'चारुवाकी था। एक और का नाम 'असंधिमित्रा' बताया जाता है। लेखों में अशोक के अवरोधन का ज़िक्र आता है। जिस का अभिप्राय रनिवास से है। परन्तु यह नहीं जाना जा सकता

कि उसकी कुल कितनी रानियां थी। शिलालेखों से मालूम होता है कि अशोक के कम से कम चार पुत्र थे। जिन्हें उसने चार मुख्य नगरों-तक्षशिला, उज्जैनी, स्वर्णगिरि और तोसाली-में वाइसराय के पद पर नियुक्त किया हुआ था। उन में से एक का नाम तीवर वा तीवल था जो दूसरी रानी चारुवाकी का लड़का था। उसके अतिरिक्त शिलालेखों में अशोक ने देवीकुमारों का ज़िक्र किया है जो स्मिथ के अनुसार उसकी सौतेली माताओं के लड़के होने चाहिये। परन्तु हमारे विचार से महिषी वा पटरानी के लड़के होने चाहिये। सम्राट् के बड़े लड़के का नाम कुनाल बताया जाता है। काश्मीर के इतिहास से पता लगता है कि अशोक का एक और भी लड़का था जिस का नाम जलौक था, जो काश्मीर का हाकिम रहा था। नेपाल में धर्म प्रचार करने वाली राजकुमारी चारुमति भी सम्राट् की लड़की थी। विष्णुपुराण सुयश को भी सम्राट् का पुत्र बताता है तथा उस के बाद सिंहासन पर बैठने वाला दर्शाता है।

फ़ाह्यान गान्धार के शासक धर्मविवर्धन को भी सम्राट् अशोक का पुत्र बताता है। इस प्रकार तीवर, कुनाल, जलौक, सुयश, धर्मविवर्धन, और अनेकों के मत

में महेन्द्र—६ लड़कों तथा संघमित्रा और चारुमति दो पुत्रियों का इतिहास परिचय देता है । इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि समाट् अशोक का एक अच्छा बड़ा परिवार था । उसके सहोदर भाई थे तथा सौतेले भाई भी थे। उसकी अनेक मातायें तथा अनेक रानियां थीं । और उन सब के हित वा कल्याण का सम्राट् को पूरा ध्यान रहता था ।

सम्राट् की प्राइवेट जीवनचर्या का भी थोड़ा बहुत पता यह शिलालेख देते हैं । छटे पहाड़ी शिलालेख में सम्राट् कहता है कि प्राचीन समय में हर समय समाचारों के सुनने की प्रथा न थी, परन्तु उसने अपना यह नियम स्थिर किया कि जिस समय में—गोशाला में वा घोड़े की पीठ पर, खाने के समय, विश्राम के समय, शयनागार में, एकान्त में, अथवा वाटिका में—वे कर्मचारी जिन पर प्रजा विषयक कार्यों का भार था, उससे मिल सकते थे । जिस से यह स्पष्टतया विदित होता है कि जब सम्राट् को फुरसत मिलती थी और वह सोया हुआ नहीं होता था, उस समय वह चाहे घोड़े की सवारी का आनन्द लेता वा भोजनशाला में बैठे हुए बन्धु बान्धवों के साथ बात चीत करते हुए भोजन करता, चाहे बाग़ीचे की हवा, खाता,

अथवा अश्वशाला का निरीक्षण करता, वा रनिवास में एकान्त विहार करता था। उसकी विशेष रुचियों का यद्यपि पता नहीं चलता। परन्तु यह सिद्ध है कि उसे मोर तथा हरिण के मांस के खाने में विशेष रुचि थी। क्योंकि यद्यपि उसने अपनी भोजनशाला के लिये हज़ारों प्राणियों के दैनिक बध को रोक दिया तो भी दो मोर तथा एक हरिण के मारे जाने का विधान कुच्छ काल के लिये रहने दिया। हां कालान्तर में वह पक्का निरामिष-भोजी बन गया इसमें सन्देह नहीं।

आठवें पहाड़ी शिलालेख से मालूम होता है कि राज्यकाल के प्रथम वर्षों में सामयिक प्रथा के अनुसार सम्राट् अशोक भी विहारयात्रा किया करता था, परन्तु १०वें वर्ष से उसने विहारयात्रा को बन्द करके धर्मयात्रा का रिवाज चलाया। विहारयात्रा का ठीक २ वर्णन यद्यपि आज किसी ग्रन्थ में नहीं मिलता तथापि महाभारत के पाठ से उस के विषय में कुछ २ पता चलता है। युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र के पुत्रशोक को दूर करने के लिये उसके निमित्त विहारयात्रा का प्रबन्ध किया था। गाने बजाने वाले, तथा नट, जादूगर आदिकों से दिल को बहलाते हुए रमणीक स्थानों पर विचरना, तथा खाने

पीने के मज़े लूटना वा शिकार की बहार लेना ही विहार यात्रा करना था। बेचारा अन्धा धृतराष्ट्र क्या शिकार खेलता। परन्तु मालूम होता है कि अशोक के समय में विहार यात्रा का मुख्य अंग शिकार खेलना होता था। शिकार खेलने के विषय में आचार्यों का मत भेद रहा है कोई उसे पसंद करते रहे हैं, दूसरे उसका निषेध करते रहे हैं। पिशुन ने शिकार खेलने का निषेध किया क्योंकि उससे डाकू, दुश्मन, जंगली पशु, जंगली आग आदि से राजा की जान जाने का भय रहता है। ऊंची नीची भूमियों पर बेतहाशा घोड़ा दौड़ाते हुए गिर जाने का डर, तथा दिग्व्यामोह से कहीं से कहीं पहुंच जाने का भय रहता है। परन्तु मौर्यवंश के कुलगुरु आचार्य चाणक्य शिकार का बड़े जोर से विधान करते हैं; उन का कथन है कि व्यायाम के लिये, बढ़ी हुई चरबी को दूर करने के लिये, स्थिर तथा जंगम लक्ष्यों के वेधने के अभ्यास के लिये, पशुओं की भिन्न २ प्रवृत्तियों तथा चेष्टाओं को जानने के लिये शिकार सर्वथा उपादेय है। अर्थशास्त्र के आचार्य कुल गुरु चाणक्य के विधान के अनुसार सम्राट् अशोक भी १० वर्षों तक शिकार आदि खेलने के लिये विहार यात्रा करता रहा। हां पक्का बौद्ध

बन जाने के बाद उसने शिकार खेलना छोड़ दिया, अतएव विहार यात्रा भी बंद करदी। हां कर्मशील होने तथा प्रजा की चित्तवृत्तियों का पूरा जानकार होने से उसने उनके स्थान पर धर्मयात्राओं का रिवाज डाला। जिन से न केवल प्रजा का चित्त विनोद ही होता था प्रत्युत लोगों की रुचि धर्म में विशेष बढ़ती थी।

मेगस्थनीज़ ने शिकार के लिये राजा के प्रस्थान का वर्णन किया है। जिस से पता चलता है कि सवारी निकलने के समय राजा लोग शस्त्रधारी औरतों के झुंड से घिरे हुए होते थे। उन औरतों के चारों ओर बरछी धारी सैनिक रहते थे। राजा या तो मचान पर चढकर शिकार करते थे अथवा हाथी पर सवार होकर। मेगस्थनीज़ के ही आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि विहारयात्रा का एक अंग सांडों, गेंडों, हाथियों और मेढों की लड़ाई करवाना भी होता था। हिन्दू अशोक इन सब में रुचिपूर्वक हिस्सा लेता रहा किन्तु बौद्ध अशोक ने अहिंसा को मूलमन्त्र मानकर विहारयात्रा का सर्वथा परित्याग कर दिया।

प्राचीन समय में समाजों और उत्सवों को रचाने का रिवाज था। कटक के हाथीगुंफ लेख से कलिंग के

राजा खारवेल, तथा नासिक के गुफालेख से राजा शातकर्णि का समाज वा उत्सवों का मनाना सिद्ध होता है। अर्थशास्त्र में भी इसका विधान है। दूसरे राजाओं की तरह अशोक भी समाजों को मनाता था। वह समाज लोगों को खिला पिला कर तथा तमाशे दिखला कर खुश रखने के लिए होते थे। खिलाने पिलाने में मांस का भाग पर्याप्त रहता था जो तभी तक जारी रहा जब तक कि समाट् बौद्ध न बना। किन्तु बुद्ध धर्म में दीक्षित हो जाने के बाद उसने मांस सहित खान पान वाले समाज को मनाना बंद कर दिया और दूसरे प्रकार के समाज का भी कार्य क्रम अपनी धार्मिक रुचि के अनुसार बदल दिया।

राजत्वकाल के प्रथम वर्षों में अशोक के चरित्र का चित्रण थोड़ा बहुत पाठकों की भेंट किया है। हम ने सम्राट् अशोक के व्यक्तिगतजीवन, पारिवारिकजीवन, तथा नैतिक वा सामाजिक जीवन, का यत्किञ्चित् परन्तु प्रामाणिक दिग्दर्शन कराने का यत्न किया है। कलिङ्ग-युद्ध के वर्णन के साथ हम इस प्रकरण को समाप्त करना चाहते हैं क्योंकि उसके बाद अशोक के जीवन ने ज़बरदस्त पलटा खाया। उसके पहले का अशोक हिन्दू था वा

कई एक इतिहास लेखकों के मत से चन्द्रगुप्त और बिन्दुसार की तरह जन्मसिद्ध जैन था। कई एक ने उसे बौद्ध भी माना है। परन्तु यदि बौद्ध भी था तो अभी उस पर बौद्ध धर्म का रंग न चढा था। इस लिये हम तो उसे अपने सुभीते के लिये हिन्दू ही मानते हैं।

आधुनिक इतिहासकारों को कलिङ्गयुद्ध के आरम्भ का कोई कारण ज्ञात नहीं। हां किसी २ ने लिखा है कि कलिंग देश का राज्य सनातन धर्मी राज्य था। और वहां का राजा पक्का सनातनी था। अशोक ने उसे बुद्धमत स्वीकार करने तथा उसके साम्राज्य के अन्तर्गत हो जाने के लिये कहला भेजा, जिसे कलिंग देश के स्वामी ने स्वीकार न किया। परन्तु प्रायः इतिहास के लेखक यही मानते हैं कि कालिंग देश के साथ लड़ाई होने से पहले स्वयं सम्राट् अशोक वैदिकधर्मी था। कारण जो भी हो सम्राट् के अभिषेक के नवें वर्ष में कलिंग के साथ युद्ध हुआ। यह युद्ध चार मास तक जारी रहा। इस युद्ध में सम्राट् को बड़ी कठिनाइयों और विपत्तियों का साक्षना करना पड़ा। उनकी अपनी सेना में महामारी के प्रकोप के कारण हज़ारों आदमी विकराल काल के गाल में जा पड़े। वीभत्स दृश्यों को देख कर तथा युद्धकाल सुलभ

रौद्रता को देख कर सम्राट् के कोमल हृदय को ज़बर्दस्त ठेस लगी। वह प्रभाव चिरस्थायी था। शायद यह युद्ध सम्राट् के लिये सर्व प्रथम था, परन्तु निश्चित रूप से अन्तिम अवश्य था। इसके समाप्त होते ही सम्राट् ने युद्ध के विरुद्ध शपथ सी लेली। कहा जाता है कि इस युद्ध में एक लाख मनुष्य मारे गये। डेढ लाख पकड़े गये। हज़ारों महामारी के ग्रास हुए। कलिंग देश पर विजय तो पाई। परन्तु सम्राट् का दिल टुकड़े २ हो गया। तीव्रनिर्वेद ने उसके दिल में पश्चात्ताप के समुद्र को उमड़ा दिया। उसी दिन से उस ने यह लिपिबद्ध कर लिया कि—"वास्तविक विजय वह है जो मनुष्य अपने ऊपर धर्म बल से प्राप्त करे। तलवार के द्वारा देशों को जीतना और विजय प्राप्त करना राजाओं का धर्म नहीं। यदि विवश होकर उन्हें युद्ध करना ही पड़े तो उस समय उन्हें धैर्य वा सहिष्णुता से काम लेना चाहिये। क्योंकि वास्तविक विजय वही है जो धैर्य और धर्म से की जाती है।" संग्राम के भीषण परिणामों को देख कर सम्राट् के रौंगटे खड़े हो गये और उसका हृदय पिघल गया। उसने लिखा है कि 'नए प्रदेश को जीतने के समय मार काट, मृत्यु और धर पकड़ तो होती ही है। यही काफ़ी शोचनीय है।

किन्तु यह अत्यन्त अधिक शोचनीय है कि मारे गये वा पकड़े गये आदमियों में बहुतेरे धर्म के सच्चे मार्ग पर चलने वाले होते हैं। उन पर हुए अत्याचारों को देख कर उन से प्रेम करने वाले अनेक सज्जनों को भी भयङ्कर क्लेश पहुंचता है।" कैसा सच्चा विचार है। कैसा सजीव अनुभव है। सम्राट् अशोक के चित्त की ग्लानि सच्ची थी। पश्चात्ताप वास्तविक था। निर्वेद निर्व्याज था। सम्राट् को कलिङ्ग देश की विजय से गहरी शर्म अनुभव होती थी। और इस लिये जहां राजशासन खुदवाते हुए उसने दूसरे सब स्थानों के पहाड़ी शिलालेखों पर कलिंग विजय का ज़िक्र खुदवाया वहां साक्षात् कलिंग देश के दोनों ही शिलालेखों में उस का ज़िक्र नहीं किया। सचमुच ही सच्ची शर्म और सच्चे पश्चात्ताप की यह सीमा है।

॥ बौद्ध सम्राट् अशोक ॥

स्मरामस्ते रूपं तदपि युवराजस्य यदभूत्
तपोलक्ष्म्या दीप्तं तदपि यदभूद्दण्डकवने ॥
जीयन्तां दुर्जया देहे रिपवश्चक्षुरादयः ।
जितेषु ननु लोकोऽयं तेषु कृत्स्नस्त्वया जितः । भारवि ।
परिच्छेदातीतः सकलवचनानामविषयः ।
पुनर्जन्मन्यस्मिन्ननुभवपथं यो न गतवान् ।
विवेकप्रध्वंसादुपचितमहामोहगहनो ।
विकारः कोऽप्यन्तर्जडयति च तापं च कुरुते ॥

(भवभूति)

कलिङ्ग विजय के पश्चात् सम्राट् अशोक ने राज्य-वृद्धि के विचार का सर्वथा परित्याग करके धर्मवृद्धि की ओर अपना ध्यान लगाया । तथा अपनी अलौकिक शक्तियों को दूसरों को जीतने के बजाए प्रजा वा पड़ोसियों के हितसाधन द्वारा उनके मनों पर काबू पाकर उन्हें धार्मिक जीवन व्यतीत कराने की ओर लगाया । धर्मवृद्धि के लिये अनुराग तथा प्रजाहितचिन्तन का उत्कृष्ट आदर्श जो सम्राट अशोक ने अपने सम्मुख रखा वह सचमुच अलौकिक था । संसार के सम्पूर्ण इतिहास

को छान डालने पर भी उसका अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। कलिंगयुद्ध के रोमाञ्चकारी दृश्य ने अशोक के हृदय में तीव्र पश्चात्ताप के साथ २ सांसारिक ऐश्वर्य के प्रति तीव्र वैराग्य पैदा कर दिया। उसके संतप्त आत्मा को भगवान् बुद्ध के निर्वाण के सिद्धान्त ने शान्ति प्रदान की। और इसलिये अपूर्व उत्साह के साथ निर्वाणपद की प्राप्ति के लिये तथा संसार मात्र के जीवों को निर्वाणपद के मार्ग पर चलाने को सम्राट् ने कमर कस ली। उसने अभिषेक के नवें वर्ष में उपासक के रूप में बौद्ध धर्म में दीक्षा लेली। अशोक सम्बन्धी प्राचीन साहित्य में उपगुप्त और तिष्य इन दो बौद्ध यतियों के नाम का बड़े आदर वा सम्मान से उल्लेख मिलता है। शायद इन्हीं में से किसी की मधुर वाणी और सरस जीवन के प्रभाव से सम्राट् ने बौद्ध धर्म को स्वीकार किया हो।

अढ़ाई वर्ष तो जैसे तैसे व्यतीत हुए, परन्तु अभिषेक के ग्यारहवें वर्ष की समाप्ति के साथ २ उसकी बौद्ध धर्म सम्बन्धिनी रुचि का विशेष जागरण हुआ। और उसने अपनी आयु के शेषभाग तथा साम्राज्य के यावदैश्वर्य को निर्वाणपद पाने तथा भूले भटकों को निर्वाणपद दिलाने में लगाने का दृढ संकल्प कर लिया। अब सम्राट् बौद्ध

भिक्षु बनकर संघ में शामिल होगया। सम्राट् के भिक्षु हो जाने का उल्लेख यद्यपि शिलालेखों में स्पष्ट है, तथापि कई एक इतिहास लेखकों ने इसे अनहोनी बात माना है। परन्तु इस में संदेह करने की कोई आवश्यकता वा गुंजायश नहीं। चौलुक्यवंशी राजा कुमारपाल का भी समय २ पर भिक्षु बनना इतिहास सिद्ध करता है। सम्भव है सम्राट् अशोक भी यदि सतत रूप से नहीं तो समय २ पर, वा थोड़े बहुत समय के लिये मन्त्रियों पर राज्यभार डालकर बौद्ध भिक्षु बन जाता हो। क्योंकि बौद्धभिक्षु के लिये यह आवश्यक नहीं कि वह अगर एक बार भिक्षु बन गया तो उसे आयुभर भिक्षु ही बना रहना पड़े। प्रत्युत जब चाहे गृहस्थी बन सकता है। बरमा और सिंहलद्वीप में अब भी लोग कुछ समय के लिये बौद्धभिक्षु बन जाते हैं और फिर सांसारिक जीवन बिताने लगते हैं। सम्भव है ऐसी ही व्यवस्था सम्राट् अशोक ने भी स्वीकार की हो। परन्तु बहुत सम्भव है कि वह आयुभर के लिये बौद्धभिक्षु बन गया हो। हां राजकीय प्रबन्ध से उसका सम्पर्क यावदायु बना रहा क्योंकि वह अपने साम्राज्य की समस्त शक्ति को संसार में धर्म के प्रचार के लिये लगाना चाहता था। राजकीय प्रबन्ध से सम्राट् का सम्बन्ध ऐश्वर्य

के उपभोग के लिये नहीं प्रत्युत उस के धर्मप्रचार के निमित्त उपयोग के लिये था।

सम्राट् अशोक का भिक्षु होना तो निर्विवाद सिद्ध है, क्योंकि उसके एक सहस्र वर्ष के पीछे चीनी यात्री इत्सिंग का स्वतन्त्र साक्ष्य मिलता है कि उसने सम्राट् के बुत देखे जिन में उसने बौद्धभिक्षु का वेष धारण किया हुआ था। बौद्धभिक्षु हुए विना सम्राट् उस बाने को किस तरह धारण कर सकता था।

भिक्षु सम्राट् ने प्रचण्ड उत्साह के साथ धर्मप्रचार के के काम में हाथ लगाया। अभिषेक के ११वें वर्ष से १३वें वर्ष तक अर्थात् दो वर्षों में ही उसने बौद्धप्रचारकों को शाक्य मुनि के बताये हुए धार्मिक सिद्धन्तों के प्रचार के लिये उत्तर वा दक्षिण में भेज दिया। जिन्होंने इन दो वर्षों के अन्दर ही मैसोर (महीशूर) बम्बई, महाराष्ट्र, सिंहलद्वीप तथा उत्तर में हिमालय के प्रदेशों, काश्मीर तथा पेगू में बौद्ध धर्म का झंडा गाड़ दिया और अनेकों को बौद्ध धर्म की दीक्षा दी। सम्राट् ने मिश्र, शाम, सीरिया और मैसीडोनिया में भी अपने प्रचारक भेजे। तिब्बत, हिन्दुकुश के प्रान्त, काबुल, गान्धार और यवन देशों में भी उसने बौद्धधर्म का प्रचार कराया। अलबेरूनी

ने लिखा है कि मुसलमानी धर्म के प्रारम्भ के पहले सारे मध्य एशिया में बौद्ध धर्म फैला हुआ था। ईरान, ईराक, रूम, अजम, शाम आदि देशों में भी बौद्धधर्म का गहरा असर पड़ रहा था। अपनी राजकीय सम्पत्ति को अपने लिये तथा अपने उत्तराधिकारियों के लिये न रखकर धर्मप्रचार में लगाने का सदुद्योग करना सम्राट् अशोक का ही काम था। अढाई सौ वर्ष पूर्व बुद्ध भगवान् ने जिस धर्म का बीज गया, प्रयाग और पहाड़ियों के मध्यवर्ती छोटे से स्थान में बोया था उसी धर्म को सम्राट् अशोक ने विस्तृत भूमण्डल के दूर २ के कोणों तक फैला दिया। एक स्थानिक धर्म को विश्वव्यापी धर्म में परिणत कर देना सम्राट् अशोक का ही काम था।

अपने साम्राज्य म जीवमात्र के सुख के लिये अशोक ने सड़कों पर छायादार तथा फलदार वृक्ष लगवाये, कूएं खुदवाये और धर्मशालाएं वा सराएं बनवाईं। उसने बड़े परिश्रम से कन्द, मूल और वनस्पतियों को अपने साम्राज्य में तथा उसके बाहिर के स्वतन्त्र राज्यों में अपने खर्च से लगवाया, जो रोगियों के लिये औषध के काम आसकें। अपने साम्राज्य में ही नहीं प्रत्युत दक्षिण भारत और यूनानी प्रान्तों में भी सम्राट् ने औषधालय खुलवाये। उदा-

रता और सहानुभूति का यह नमूना दुनियां के इतिहास में दूसरा मिलना असम्भव है।

अभिषेक के १३वें वर्ष में सम्राट् ने सब प्रान्तिक शासकों को आदेश किया कि वे अपने २ प्रान्त में सभा करके धर्म का प्रचार कराएं। छोटे कर्मचारियों को आदेश था कि धर्म की शिक्षा पाने के लिए वे अवश्यमेव उस सभा में सम्मिलित हों। अनेक प्रान्तों में इन धार्मिक सम्मेलनों का विधान प्रति पांचवें वर्ष किया गया। परन्तु तक्षशिला और उज्जयिनी के वाइसराओं को यह आदेश हुआ कि वह उन्हें प्रति तीसरे वर्ष में करें।

एक और वर्ष के बीतने पर तजरुबे ने बता दिया कि धार्मिक आदेशों का ठीक २ पालन कराने के लिये और भी उद्योग करना आवश्यक है, इसलिए सम्राट् ने धर्ममहामात्र नियुक्त किये जिनका काम था कि धर्म के प्रचार वा उसके सम्यक् पालन का प्रबन्ध करें। वह सम्राट् की प्रजा में, सरहद्दी अर्धस्वतन्त्र जनसमूहों में, धर्म के पालन की प्रगति का निरीक्षण करें। प्रजामात्र के सुख और कल्याण के बढाने का यत्न करें। निर्धनों और बूढों को सुखी करना उनका प्रधान लक्ष्य ठहराया। अनुचित वा अन्याययुक्त दण्ड का हटाना, बूढों तथा बड़े

परिवारों के एक मात्र आधार भूत अपराधी वा आकस्मिक विपद्ग्रस्त जनों के दण्ड को कम करना, राजधानी में वा दूसरे नगरों में राजपरिवार, सम्राट के भाइयों बहिनों तथा रानियों के धर्मपालन का पर्यवेक्षण, और दान की मर्यादा का निरीक्षण करना उनका काम ठहराया। रानी चारुवाकी के शिलालेख से पता लगता है कि सम्राट् तथा रानियों के दान का ठीक २ वितरण और विभाजन करने के निमित्त एक दान पुण्य का महकमा भी बनाया गया था जिसका प्रबन्ध राज्य के बड़े २ कर्मचारी करते थे।

अहिंसा के परमोपासक तथा दयाधर्म के सच्चे पालक सम्राट् अशोक ने कालिंगदेश की सीमा पर के जंगली लोगों को भी अभयदान दिया तथा प्रेम पूर्वक उन्हें धर्म के मार्ग पर लाने का यत्न किया। यहां तक कि बेज़बान जानवरों पर भी उसने अपनी दयामय दृष्टि का प्रसार किया। उसकी धर्मलिपियों से उस क्रम का पता लगता है जो कि उसने पशुजगत् पर दया दिखाने के उपायों में बरता। लोगों के शताब्दियों के व्यसनों को क्रमशः दूर कर देना ही विशेष लाभदायक है इस बात को मनोविज्ञान के अनुभवी सम्राट् ने भलीभांति जान लिया। यह बताया

जाचुका है कि सम्राट् अशोक के भोजनालय के लिये प्रति दिन हज़ारों पशुओं का खून होता था। राज्य के पहले ८ वर्षों में तो शायद उसे इसका कुछ फ़िक्र न हुआ। परन्तु ९वें वर्ष से केवल तीन प्राणी—दो मोर और एक हरिण ही महानस के लिए मारे जाने लगे। यह व्यवस्था १३वें वर्ष तक जारी रही। परन्तु उस वर्ष में जब कि शिलालेखों का खुदवाना आरम्भ हुआ और धार्मिक सम्मेलन होने जारी हुए तो मयूरदल और हारिणमण्डल को भी सम्राट् ने सदा के लिये अभयदान दे दिया। अभिषेक के ११वें वर्ष से शिकार खेलना भी सम्राट् ने बन्द कर दिया और विहारयात्रा के स्थान पर धार्मिकयात्राओं को जारी किया, जिनके द्वारा दानपुण्य, धर्मप्रचार, तथा धार्मिक संलाप वा वादविवाद होने लगे, और तीर्थ स्थानों के दर्शन होने लगे। १३वें वर्ष यज्ञ के निमित्त भी पशुओं के बध को रोक दिया गया। हां यह नियम अभी राजधानी म ही बरता जाने लगा। राजधानी के अन्दर होने वाली दावतों में भी मांस का प्रयोग सर्वथा निषिद्ध ठहराया। अभिषेक के २७वें वर्ष तक सम्राट् ने साम्राज्य भर में ऐसा अहिंसामय वायुमण्डल पैदा कर लिया कि वह समस्त प्रजा पर लागू होने वाले जीव

दयापरक नियमों को जारी कर सका।

कहा जाता है कि अशोक ने प्रजा को सन्मार्ग पर चलाने के लिये और कुपथगामिता के कुपरिणामों को बतलाने के लिये एक प्रत्यक्ष नरक का नमूना बनाया था, परन्तु दयाधर्म को पूर्णतया स्वीकार कर लेने के बाद उसको हटा दिया।

यह भी कहा जाता है कि सम्राट् ने मृत्युदण्ड को भी सर्वथा हटा दिया था। परन्तु यह सत्य नहीं प्रतीत होता। हां उसकी सख्तियों को सम्राट् ने अवश्य दूर किया था। जहां न्यायाधीशों को अधिकार था कि वह अपराधियों को मृत्युदण्ड दें, सम्राट् को क्षमाप्रदान कर जीवदान देने का भी अधिकार था। तथा प्रत्येक वर्ष-गांठ पर कैदियों के दरवाज़े खोल दिये जाते थे और उन्हें छोड़ दिया जाता था। मृत्युदण्ड के भागी अपराधी को तीन दिन मौत के लिये तय्यार होने के निमित्त दिये जाने का विधान किया गया।

धार्मिक यात्राओं की चर्चा ऊपर की जा चुकी है। जिनमें दान, दक्षिणा, तीर्थ दर्शन, महापुरुषों का दर्शन, देशदशानिरीक्षण, धर्म प्रचार होता था। ऐसी ही धर्म-

यात्रा सम्राट् ने २१वें वर्ष में की थी। राजधानी से चल कर गंगा को पार कर के लिच्छवी राजवंश की राजधानी वैशाली नगरी में सम्राट् पहुंचा जिसे आजकल मुज़फ़्फ़र-पुर तथा चम्पारन का इलाका कहना चाहिये। जगह २ पर स्तम्भों और स्तूपों का निर्माण करवाया। वहां से पूर्व की ओर जाकर सम्राट् या तो कुशीनगर में पहुंचा जहां गौतम बुद्ध को निर्वाण मिला था, अथवा पश्चिम की ओर जाकर और गण्डक नदी को लांघ कर सम्राट् लुम्बिनी बाग़ में पहुंचा जहां गौतम बुद्ध का जन्म हुआ था। कुशीनगर के मार्ग में समाट् अशोक का बनवाया हुआ शेर-वाला स्तम्भ मौजूद है। और लुम्बिनी के उद्यान में भी एक स्तम्भ खड़ा है जिस पर घोड़े की शकल बनी हुई है। और उस पर के खुदे हुए सुहावने अक्षर आज भी उसी प्रकार से चमकते हुए सम्राट् के निम्नलिखित आशय को प्रकट करते हैं।

'प्रियदर्शी सम्राट् ने २१वें वर्ष में यहां स्वयं पहुंच कर दर्शन किये। भगवान् बुद्ध के जन्म स्थान होने के कारण पत्थर का घोड़ा बनवाकर स्तम्भ पर लगवाया गया। और भगवान् के जन्म स्थान के कारण लुम्बिनी ग्राम से कर न लिया जावेगा तथा राजकीय दान का हिस्सा दिया गया'।

वहां से कुछ मीलों तक पश्चिम की ओर जाकर सम्राट् ने कनकमुनि के स्तूप के दर्शन किये, जो गौतम से पहले के एक बुद्ध थे।

यहां भी सम्राट् ने एक स्तम्भ गाड़ा जिस पर यह भी लिखवा दिया कि १५वें वर्ष में यहां के स्तूप को सम्राट् ने बढ़ाया था। यहां से यात्रा करते हुए सम्राट् नेपाल में पहुंचा, और वहां तक गया जहां ललितपत्तन और कठमाण्डू हैं। वहां से पश्चिम की ओर जाकर सरस्वती नदी तक गया। क्योंकि इन प्रदेशों में गौतम बुद्ध विचरते रहे थे। सम्राट् अशोक के मार्गदर्शी स्मारक चिह्न यद्यपि कुछ काल के ग्रास हो चुके तो भी कुछ एक अभी तक विद्यमान हैं। और इक्कीस सदियों से सम्राट् के अलौकिक धर्मानुराग की घोषणा कर रहे हैं।

इन स्मारकों के अतिरिक्त इस यात्रा के विषय में लोक प्रसिद्धि भी है तथा अशोकावदान नामक संस्कृत काव्य भी इसका साक्ष्य देता है। सम्राट् ने उपगुप्त के साथ लुम्बिनी उद्यान देखा। फिर कपिलवस्तु, बुद्ध गया के बोधी वृक्ष, ऋषिपत्तन वा सारनाथ, जो बनारस के समीप है, कुशीनगर, जैत्रवन का विहार, जो सरस्वती

नदी के किनारे था, और वक्कुल तथा आनन्द के स्तूपों के दर्शन किये तथा बहुत २ दक्षिणाएं दीं।

अपने समय में धर्मप्रचार के निमित्त सम्राट् ने बौद्ध प्रचारकों को चारों ओर दूर २ तक भेजा। इतिहास कुछ एक प्रचारकों का नाम आज तक स्मरण कराता है।

मज्झन्तिक को काश्मीर और गान्धार में, महादेव को महिषमण्डल (मैसूर) में, रक्षित को वनवासी (उत्तर कानारा) में; योनधम्मरक्खित को अपरान्तक (बम्बई के उत्तर का किनारा) में, मज्झिम को कश्यप, मलिकदेव, धुन्धुभिनाश, तथा साहसदेव के साथ हिमालय के प्रदेशों में, सोन और उत्तर को सुवर्णभूमि (पेगू) में; महाधम्मरक्खित को महाराष्ट्र में, महारक्षित को यवन प्रदेशों में, जो उत्तर पश्चिम में थे; महामहिन्द को सिंहल द्वीप में, इत्तिया, उत्तिया, सम्बल, भद्दसाल आदि के साथ भेजा। यह सब मौद्गल्य तिष्य के शिष्य थे। धर्मप्रचारक मण्डल का तिष्य को प्रधान समझना चाहिये। सिंहल-द्वीप में बौद्धधर्म के प्रचार के लिये अशोक के भाई महेन्द्र का जाना तो सभी जानते हैं। उसके साथ सम्राट् की पुत्री संघमित्रा भी गई थी। उसने वहां के राजा को बौद्ध-धर्म में दीक्षित किया तथा सारे सिंहलद्वीप में बौद्धधर्म

का खूब प्रचार किया। अभी तक सिंहल का धर्म बौद्ध ही है। महेन्द्र ने यावज्जीवन सिंहलद्वीप में धर्मप्रचार किया। आज भी वहां लोग महेन्द्र की पूजा करते हैं। उस के स्मारकरूप वहां एक स्तूप बनाया गया था। जो आज तक सिंहलद्वीप के दर्शनीय पदार्थों में से एक माना जाता है। पुरातत्त्व विभाग के परिश्रम से हाल ही में अनुराधपुर नामक नगर के कुछ खण्डहर मिले हैं। यह अनुराधपुर बौद्धधर्म के विस्तार का एक उत्कृष्ट स्मारक है। एक अंग्रेज़ ने तो इसकी प्रशंसा में यहां तक लिख डाला है कि 'इसके सम्मुख रोम और यूनान तुच्छ जान पड़ते हैं।' सम्राट् ने चोल, पाण्ड्य, केरलपुत्र, सातियपुत्र इन चार स्वतन्त्र दक्षिण प्रदेशों में भी धर्मप्रचार कराया। और वहां भी अनेक स्तूप और विहार बनवाए।

विहारों और स्तूपों के अतिरिक्त सम्राट् ने अनेक शिलालेख खुदवाये तथा स्तम्भ गड़वाए। जो आज तक उसके धर्मानुराग का परिचय दे रहे हैं। इन लेखों में से कई एक अब तक उपलब्ध हो चुके हैं। सम्राट की आन्तरिक इच्छा यही थी कि न केवल उस समय की प्रजा और शासक लोग प्रत्युत आनेवाली प्रजा तथा भावी शासक भी उसके सिद्धान्तों से परिचित हो कर उस के निर्दिष्ट

मार्ग पर चलें, आज भी शिलालेख उस उद्देश्य को पूरा कर रहे हैं।

सम्राट् ने बौद्ध भिक्षुओं की परिषद् द्वारा भिन्न २ मतों को रोककर भगवान् बुद्ध के निर्दिष्ट सिद्धान्तों और मन्तव्यों को स्थिर कर डाला। कहते हैं कि बौद्ध धर्म के इतिहास में यह तीसरी परिषद् थी।

पहली परिषद् बुद्ध के निर्वाण के बाद ही उस के चेलों ने मगध की उस वक्त की राजधानी राजगृह में कर ली थी और सिद्धान्तों वा मन्तव्यों को स्थिर करने का यत्न किया था। लगभग एक सौ वर्ष बीतने पर वैशाली में दूसरी परिषद् हुई थी जिस से वैशाली के नास्तिक मण्डल की नास्तिकता को दूर कर के मन्तव्यों के स्थिर कर देने का यत्न किया गया था। सम्राट अशोक के समय में विशेष समारोह तथा उचित प्रबन्ध के साथ तीसरी परिषद् निर्वाण के २३६वें वर्ष में बैठी। ५००० के लगभग उपस्थित भिक्षुओं में उपगुप्त आदि मान्य और लोक विदित भिक्षु भी सम्मिलित हुए थे। परिषद् का सभापति अपने समय का सर्वमान्य विद्वान् और तपस्वी तिष्य मौद्गल्य निर्धारित हुआ। धार्मिक

मन्तव्यों को स्थिर करके तथा मन्तव्य पुस्तकों पर प्रामाणिकता की मोहर लगा कर सम्राट् ने बौद्ध धर्म का महान् उपकार किया है। तथा तन, मन, धन द्वारा बुद्ध धर्म की जो सेवा सम्राट् अशोक ने की, वह सर्वथा स्तुत्य है, प्रशंसनीय है, अनुपम है, अनुकरणीय है, आदरणीय है।

अशोक के साम्राज्य का विस्तार।

पृथ्वीपते शुभमते भवतो भवस्य ब्रमो वयं सुयशसा कियदन्तरं वा।
गौरीचकार गिरिशो निजमर्धमङ्गं गौरीकृतं च भवता भुवन समस्तम्॥

अत्यन्त सफलतापूर्वक जिस विशाल साम्राज्य का शासन सम्राट् अशोक ने दीर्घकाल तक किय, उसके विस्तार को ठीक २ समझना हमारे लिये मुश्किल नहीं। इस विषय में यूनानी तथा रोमन लेखकों के लेख, सम्राट् के अपने अजर अमर शिलालेख, तथा लौकिक प्रसिद्धि और स्मारक चिह्नों का पाया जाना काफ़ी प्रमाण हैं। अलक्षेन्द्र का जीता हुआ इलाका सेल्यूकस को चन्द्रगुप्त के हवाले कर देना पड़ा था। (Strabo) स्ट्राबो के कथन से यह स्पष्टतया प्रतीत होता है कि भारतीय साम्राज्य की सीमा हिन्दुकुश तक उस समय मान ली गई थी। अतः पश्चिमी अफ़गानस्थान, मेकरान, काबुल, ग़ज़नी, कन्धार, हिरात का सारा इलाका चन्द्रगुप्त के कब्ज़े में आगया। इस लिये अशोक के साम्राज्य की पश्चिमी सीमा हिन्दुकुश पर्वत को मानना चाहिये।

काश्मीर की राजधानी श्रीनगर को अशोक ने बनाया था यह आजतक लोकप्रसिद्ध है। वहां के इतिहास लेखकों

ने भी इस बात को स्वीकार किया है। तथा अनेक इमारतों के खण्डरात का अशोक से सम्बद्ध होना वह स्वीकार करते हैं। सम्राट् अशोक के पुत्र जलौक को राजतरङ्गिणी का लेखक कल्हण काश्मीर का गवर्नर बताता है। ह्यूनसांग ने भी लिखा है कि सम्राट् अशोक ने अर्हतों के लिये ५०० विहार बनवा कर काश्मीर का रम्य प्रदेश भिक्षुओं को दान कर दिया था। इसलिये काश्मीर को सम्राट् अशोक के साम्राज्य की पश्चिम उत्तरी सीमा मानना उचित है।

नेपाल की तराई में सम्राट् के स्तम्भ मिल ही चुके हैं। चूडियाघाटी अथवा गोरामसान दर्रे से सम्राट् अशोक का नेपाल के अन्दर पहुंचना एक ऐतिहासिक घटना है। कठमाण्डु के समीप ही ललितपत्तन का नगर सम्राट् अशोक का ही बसाया हुआ है। उस के मध्य में जो मन्दिर अशोक ने बनवाया था वह आज भी महल अथवा दरबार के दक्खन की ओर विद्यमान है। ललितपत्तन के चारों ओर जो चार स्तूप सम्राट् ने बनवाए थे वे आज भी अवस्थित हैं। दो समाधिमंदिर और एक कबर अशोक के बनवाए हुए आज तक माने जाते हैं। नेपाल की यात्रा में सम्राट् अशोक की पुत्री चारुमति जो

क्षत्रिय देवपाल की धर्मपत्नी थी पिता के साथ आई थी। वह भी धर्म प्रचार में लग गई और कठमाण्डू के समीप ही पशुपतिनाथ में एक महिलाविहार बना कर रहने लगी थी। वह विहार आज भी मौजूद है और उसी के नाम से प्रसिद्ध है। इसलिये उत्तर में अशोक के साम्राज्य की सीमा नेपाल को माननां ही चाहिये।

बौद्धों की दन्तकथाओं से पता चलता है कि ताम्रलिप्ति की बन्दरगाह, जो आज तामलुक कहलाती है, तथा कलकत्ता से पैंतीस मील के फ़ासले पर मिदनापुर के ज़िले में है, सम्राट् अशोक के साम्राज्य के अन्तर्गत थी। सिंहलद्वीप से आने वाले यात्री यहां पर ही जहाज़ों से उतरा करते थे। चन्द्रगुप्त का नन्द से बंगाल का इलाका भी पाना इतिहास सिद्ध है। अतः गंगा के मुहाने को पूर्वी सीमा मानना चाहिये।

अभिषेक के नवें वर्ष में कलिंग देश को सम्राट् अशोक ने जीत लिया था। इसलिये उसे ही पूर्वदक्षिण सीमा समझना चाहिये।

दक्षिण में मैसोर, तथा दक्षिणपश्चिम में गुजरात काठियावाड़ तक साम्राज्य का विस्तार था। तात्पर्य यह है कि सम्राट् अशोक के साम्राज्य में लगभग सारा भारत

वर्ष, नेपाल का इलाका, अफ़गानिस्तान का बहुत सा अंश सम्मिलित थे। इतने विशाल साम्राज्य का शासन लगभग ४१ वर्ष तक सम्राट् अशोक ने किया, तथा ज़बरदस्त परिवर्तन और सुधार किये, परन्तु कोई भी चूं न कर सका। कहीं भी किसी ने कोई उपद्रव खड़ा न किया। यह सब उसके प्रबन्ध की खूबी पर निर्भर था। उसी प्रबन्ध का हम अगले प्रकरण में सविस्तर वर्णन करेंगे।

राज्यप्रबन्ध ॥

आरभन्तेऽल्पमेवाज्ञाः कामं व्यग्रा भवन्ति च ।
महारम्भाः कृतधियस्तिष्ठंति च निराकुलाः ॥

(माघ)

चन्द्रगुप्त ने भारत की बिखरी हुई शक्ति को एकत्रित करने के लिये एकच्छत्री साम्राज्य की स्थापना की थी। और चौबीस वर्ष तक निर्विघ्न तथा शान्तिपूर्वक उसका उपभोग किया था। अवश्य ही साम्राज्य के प्रबन्ध के लिये उसने जिस पद्धति का अवलम्ब किया वह सफल थी और प्रायः सर्वाङ्गसुन्दर थी। मेगस्थनीज़ के लेखों तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र से उस पद्धति का हमें बहुत अच्छा आभास मिल रहा है। थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ अशोक ने भी उसी पद्धति का अनुसरण किया यदि हम यह स्वीकार करें तो शायद अनुचित न होगा। अशोक के शिलालेखों से भी उसी पद्धति की बहुत कुछ झलक मिल जाती है।

सम्राट् का दर्जा तो सर्वोपरि था ही। उसके नीचे अलग २ प्रान्तों के शासन के लिये वाइसराय मुकर्रर थे, जो प्रायः राजकुमार वा राजघराने से सम्बन्ध रखनेवाले होते थे। उन्हें सहायता के लिये सहकारी मन्त्रिवर्ग मिला

हुआ था। तक्षशिला में एक वाइसराय था जो सम्भवतः सतलुज से लेकर हिन्दुकुश तक के इलाके का शासन करता था। पश्चिमी भारत के शासन के लिये एक वाइसराय उज्जैनी में निवास करता था। इन दोनों स्थानों पर स्वयं अशोक वाइसराय रह चुका था।

तीसरा वाइसराय सुवर्णगिरि में निवास करता था जिसे कनकगिरि भी कहते थे। जो प्रोफ़ेसर कृष्णस्वामी अयंगर के मत से निज़ाम के इलाके में रायचूर का ज़िला आजकल कहलाता है। प्रायद्वीप का शासन उसी के सुपुर्द था।

नये जीते हुए कलिंग देश के शासनार्थ तोसाली में एक राजकुमार वाइसराय नियत था।

सम्भव है कि इन के अतिरिक्त और भी प्रान्तीय शासक हों। इन से उतर कर जो अफ़सर थे वे रज्जुक कहलाते थे, और उनसे नीचे के अफ़सर प्रादेशिक कहलाते थे। धर्ममहामात्र के ओहदेवाले जो मैजिस्ट्रेट थे उन्हें अशोक ने ही पहले पहले नियुक्त किया। उनका काम राजदण्ड पाये हुए अपराधियों की अपील को सुनकर उचित दण्ड का विधान करना था। उन्हें सम्राट् का आदेश था कि बूढों, आकस्मिक विपत्तिग्रस्तों तथा बृहत्

परिवार के आधारभूत जनों के दण्ड को घटादें अथवा उन्हें क्षमा करदें। किसी को अनुचित रूप से दण्ड न मिले इस बात का पर्यवेक्षण उनके ज़िम्मे थे। दान विभाग के भी वह अध्यक्ष होते थे तथा राजपरिवारों की धार्मिक प्रगति के भी वे निरीक्षक होते थे। इनके अतिरिक्त स्त्रियां भी नियत की गई थीं जो महिलाजगत् की धार्मिक स्थिति का निरीक्षण करती थीं। अफसर अपने २ इलाके में दौरा करते थे। खुफ़िया पुलिसविभाग बहुत बढिया था, जिस के द्वारा सम्राट् को साम्राज्य के कोने २ के समाचार पहुंचते रहते थे। इन समाचारों को सुनने के लिये सम्राट् भी चौबीस घंटों तय्यार रहता था चाहे वह अन्तःपुर में हो वा उद्यान में वा कहीं भी हो।

सम्राट् के पास सेना भी सुव्यवस्थित और बढ़ी चढ़ी थी। (Pliny) प्लिनी का कथन है कि ६००,००० पत्ति ३०,००० घुड़सवार, ९,००० हाथी तथा अगणित रथ सम्राट की फ़ौज में थे।

युद्धविभाग एक समिति के आधीन था जिसके तीस सदस्य थे। उनमें स ५।५ सदस्य निम्नलिखित ६ विभागों का प्रबन्ध करते थे:—

१—जलसेना विभाग।

२—रसद विभाग।

३—पदातिसेना विभाग।

४—अश्वारोहसेना विभाग।

५—सांग्रामिकरथ विभाग।

६—हस्तिसेना विभाग।

शस्त्रों को शस्त्रागार में रक्खा जाता था। घोड़ों तथा हाथियों के लिये अश्वशाला तथा हस्तिशालायें थीं। रथों को हांकने के लिये बैल थे। सांग्रामिक रथों के आगे दो वा चार घोड़े जोते जाते थे, और उन पर सारथि के अतिरिक्त दो योधा बैठते थे। हाथियों पर हस्तिपक के अतिरिक्त तीन योधा बैठते थे।

ज़मीन को पानी देने के लिये नहरविभाग जारी था और कृषि की उन्नति की ओर पूरा ध्यान दिया जाता था। खेती बाड़ी के उपयुक्त सारी ज़मीन सरकारी मानी जाती थी और मालगुज़ारी के उगराहने के लिये अफ़सर नियत थे।

सड़कों के बनाने तथा मरम्मत करने के लिये एक अलहदा महकमा था। पाटलिपुत्र से एक सड़क तक्षशिला तक गई थी जो एक हज़ार मील लम्बी थी। सड़कों पर मीलों के निशान लगे हुए थे। हां सम्राट् अशोक ने उनके

किनारे फलदार तथा छायादार पेड़ लगाकर, कुएँ खुदवाकर, धर्मशाला और सराएं बनवाकर प्रजा को सुखी करने का विशेष यत्न किया था।

इस विस्तृत साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र नगर था जो गंगा और शोण के संगम पर बसा हुआ था। शोण के दक्षिण किनारे पर पाटलिपुत्र का नगर वसा हुआ था। आज कल के पटने की तरह वह भी अधिक लम्बा और कम चौड़ा था। उसकी लम्बाई ९ मील और चौड़ाई १॥ मील बतलाई जाती है। शहर के चारों तरफ़ उसकी रक्षार्थ लकड़ी की दीवार तथा गहरी खाई का वर्णन किया जा चुका है। सम्राट् अशोक ने उसकी विशेष रक्षा के लिये पत्थर की बड़ी मज़बूत दीवार और भी बाहिर की तरफ़ बनवाई। तथा शहर के अन्दर पत्थर के भवन पर्याप्त संख्या में बनवाए जिनकी कारीगरी दर्शकों को आश्चर्यान्वित करने वाली थी। यहां तक कि वे उन्हें देवनिर्मित समझने लगे थे। राजधानी की सजावट का सम्राट् ने भरसक यत्न किया। आज उसके खण्डरात थोड़े बहुत प्रत्यक्ष हो रहे हैं। हां खुदाई का काम जारी हो तो समग्र पाटलिपुत्र के पृथ्वी के गर्भ से निकल आने की आशा है। शहर का बहुत बड़ा भाग नदियों की रेत

के नीचे १० से २० फुट की गहराई में दबा पड़ा है, जहां पटना और बांकीपुर आज आबाद हैं, तथा ईस्ट इण्डिया रेलवे का प्रधान कार्यालय है। जो भी थोड़ा बहुत हिस्सा इन खण्डरात का समय २ पर मिला है उससे प्राचीन दर्शकों वा यात्रियों के नगर की समृद्धिसम्बन्धी वर्णन का समर्थन होता है।

राजधानी के आन्तरिक प्रबन्ध के निमित्त भी तीस सदस्यों की एक समिति थी, जिसके ६ विभाग थे, और प्रत्येक विभाग की समिति में ५, ५ सदस्य थे।

(१) कारीगरी वा दस्तकारी विभाग।

(२) विदेशी यात्री विभाग।

(३) जन्म और मरण के ब्योरे का विभाग।

(४) व्यापार विभाग।

(५) वस्तु निर्माण विभाग।

(६) बिकरी की वस्तुओं पर कर लगाने का विभाग।

विदेशी यात्री विभाग के द्वारा विदेश से आए हुए सभी आदमियों की देख भाल की जाती थी। उनकी बीमारी में इलाज का उचित प्रबन्ध, मृत्यु होने पर अन्त्येष्टि संस्कार की व्यवस्था, भारत से लौटने पर रक्षार्थ रक्षकों का नियत करना आदि होते थे।

जन्म और मरण के ब्योरे वाले विभाग में जन्मे हुए बच्चों का और जो आदमी मर जाते थे उनका हिसाब रखने के लिये सर्कारी रजिस्टर थे । जिनसे जनसंख्या का पूरा पता चलता था।

व्यापार विभाग द्वारा तोल और नाप की ठीक २ व्यवस्था रखी जाती थी। और प्रत्येक पदार्थ को उचित मौसम में बेचने के लिये सौदागरों को मजबूर किया जाता था। एक तरह से बिक्री की चीज़ों की कीमतें सर्कार नियत करती थी ! एक प्रकार से अधिक की वस्तुओं को बेचने वाले से दुगना टैक्स लिया जाता था।

दण्ड की व्यवस्था सख्त ज़रूर थी । कहा जाता है कि बिक्री की वस्तुओं पर लगान देने से बचने का यत्न करने वाले को मृत्यु दण्ड मिलता था। सम्राट् की शिकारी यात्राओं के समय वा साधारण सवारियों के निकलने के अवसरों पर रस्सियों से मार्गों का निर्देश किया जाता था और उन रस्सियों के अन्दर प्रविष्ट होने वाले को मृत्यु दण्ड मिलता था . किसी कारीगर की आंख वा हाथ को नष्ट करने वाला भी मृत्युदण्ड पाता था। यदि कोई किसी आदमी के किसी अंग को बर्बाद करता था तो उसका भी वह अंग तथा दहिना हाथ काट लिया जाता

था। झूठी गवाही देने वाले के हाथ और पाओं को कुचला जाता था। कुछ लेखकों का कथन है कि कुछ एक घृणित अपराधों का दण्ड यह था कि अपराधी के बाल मूंड दिये जाते थे। दण्ड व्यवस्था की सख्ती तो अवश्य माननी पड़ती है परन्तु यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिये कि जहां कड़ा दण्ड विधान हो वहां अपराध भी बिल्कुल घट जाते हैं। सुना है कि अमीर अब्दुल रहमान ने काबुल के बाज़ार में पड़े हुए एक बटुए को उठाकर दर्बार में पेश कर देने वाले का भी इस लिये हाथ कटवा दिया था कि बटुए वाला जहां अपनी चीज़ गिरा गया था उसे वहीं से वह चीज़ नहीं मिल सकती थी! चीज़ के खोए जाने पर चाहे जितने दिनों के बाद ढूंडने वाला उस जगह पहुंचे वह उसी स्थान से खुद अपनी वस्तु को उठा सके यह अमीर का आदर्श था! निदान काबुल से चोरी उठ गई। एक व्यभिचारी पुरुष को सब के सामने नग्न अवस्था में गर्म लोहे पर तपा कर मार डाला तथा व्यभिचारिणी स्त्री को भी तपे हुए मूसल द्वारा अत्यन्त पीड़ित कर के कुत्तों से नुचवा डाला। तब से काबुल में व्यभिचार का नाम नहीं रहा। और लीजिए! आर्यों के उपनिवेश जावा की बात है जिस का वर्णन चीन के ऐतिहासिक ग्रन्थों द्वारा उप-

लब्ध होता है। छठे शतक में मध्य जावा में कलिंगनामक राज्य का उदय हुआ। '६७४ ई० में कलिंग के राजासन पर सिमा नाम की एक रानी आसीन हुई। उसका राज्य रामराज्य के सदृश था। प्रजा का पालन उसने पुत्रवत् किया। "चोरी" का शब्द केवल कोष में रह गया। उस समय सुमात्रा के पश्चिमी समुद्र तटवर्ती प्रान्त में कुछ अरब बस गए थे उनके सरदार ने अशर्फ़ियों से भरी हुई एक थैली कालिङ्ग-राज्य की सीमा के भीतर, एक सड़क पर, रखवादी कि देखें उसे कोई उठा ले जाता है या नहीं। तीन वर्ष तक वह वहीं पड़ी रही, किसी ने उसे छूवा तक नहीं। इसके बाद एक दिन कलिंग के युवराज के पैर से वह थैली टकरा गई। इस पर रानी सिमा सख्त नाराज़ हुई। पहले उस ने युवराज को बध-दण्ड दिये जाने की आज्ञा देदी, पर लोगों के बहुत कुछ समझाने पर उसने युवराज के उस पैर का केवल अंगूठा कटवा कर उसे छोड़ दिया। इस घटना का भी उल्लेख चीनियों के इतिहास में है।

(सरस्वती पृ० ११२३ अक्टूबर सन् १९२७)

चन्द्रगुप्त के समय में भी 'श्रुतौ तस्करता स्थिता' वाली उक्ति चरितार्थ होती थी। मेगस्थनीज़ का कथन

है कि कोई आदमी अपने घर के दरवाज़े को ताला नहीं लगाता। आवश्यकता ही न पड़ती थी। चोरी चकारी का नामोनिशान न था। इसी प्रकार दूसरे अपराधों के विषय में भी समझना चाहिये। मनु के कथनानुसार:—

दण्डः सुप्तेषु जागर्ति, दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥
यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा।
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत्साधु पश्यति ॥

दण्ड के भयसे पाप नष्ट होजाते हैं यह बात बिलकुल सच है। हां राजा को उसकी व्यवस्था उचित रूप म करनी चाहिये। इसलिये दया के समुद्र उदार सम्राट् अशोक ने धर्ममात्रों को नियत किया था जो दण्ड की उचित व्यवस्था का पूरा २ निरीक्षण करते थे। प्रति वर्ष कारागारों के दर्वाज़े सम्राट् की वर्ष गांठ के अवसर पर खोल दिए जाते थे और कैदियों को छुट्टी मिल जाती थी। अभागे अपराधियों को जिन्हें मृत्युदण्ड भोगना अवश्य बदा था उन्हें उसके लिए तय्यार हो सकने के निमित्त तीन दिनों की मोहलत मिलने का विधान किया गया था। तात्पर्य यह कि दण्ड की सख्ती से प्रजा पाप से सर्वथा मुक्त हो सकती है और उसको दूर कर देना ही राज-नियम का उद्देश्य है। अगर कड़े दण्ड की व्यवस्था करना

सभ्यता के शायां नहीं तो जेलख़ाने भरे रखने तथा कचहरियों को लबालब भरा रखना भी तो कोई सभ्यता की निशानी नहीं कही जा सकती। हां दण्ड व्यवस्था का प्रधान लक्ष्य जन सुधार होना चाहिए, जैसा कि जापान में कुछ २ मिलता है, बदला लेना नहीं। आज भी बीसवीं सदी में यूरोप तथा अमेरिका में इस लक्ष्य का पालन दिखाई नहीं पड़ता। इसलिए दो अढ़ाई हज़ार वर्ष पहले की व्यवस्था और विधानों के विषय में उतनी सख्ती से समालोचना नहीं की जा सकती। अस्तु। सम्राट् अशोक जैसे नेता का दया धर्म की ओर इतना ध्यान था जितना किसी आदमी को हो सकता है। हां इसी व्यवस्था के प्रभाव से सम्राट् को मगध के अन्दर बैठकर काबुल और कन्धार के नगरों में उचित शासन कर सकने की हिम्मत थी। और सुदूरवर्ती प्रान्तों में भी कभी कोई उपद्रव खड़ा न हुआ। सम्राट् के ४१ वर्षों के दीर्घ काल में राजधानी से १॥ हज़ार मीलों के फ़ासले पर उन दिनों में जब कि रेलतार का प्रबन्ध न था ऐसी सुव्यवस्था ऐसा सुन्दर शासन एक अद्भुत और आश्चर्यजनक घटना है, और इस का श्रेय जहां इन सम्राटों की हितचिन्ता तथा जागरूकता को है, सेना विभाग की सक्षमता को है, वहां राज दण्ड

की तीव्र व्यवस्था को भी है। यदि यह आवश्यक और सर्वथा आवश्यक न होता तो गूंग और बहिरे जानवरों पर दया का हाथ फैलानेवाला सम्राट् अशोक अवश्यमेव मानव समाज को इन सख्तियों में न जकड़ता। इन तीव्र विधानों को सभ्यता के माथे पर कलंक का टीका न समझ कर यह समझना चाहिये कि उनकी आवश्यकता का कारण था एकमात्र ज़रूरत और मजबूरी।

इतिहास के लेखक को यह समझने का और लिखने का हक़ है कि जो व्यवस्था राजधानी में प्रबन्ध के संबंध में थी वही व्यवस्था दूसरे २ नगरों में भी थी। मेगस्थनीज़ ने राजधानी का वर्णन किया क्योंकि उसे वहां रहना पड़ा। और उसी के वर्णन से दूसरे नगरों का वर्णन भी समझा जा सक्ता है। 'सर्वे पदा हस्तिपदे निमग्नाः।' हाथी के पाओं में सब के पाओं यह कहावत है ही।

सम्राट् अशोक के सिद्धान्त ।

चित्तवानसि कल्याणी यच्चां मतिरुपस्थिता । (भारवि)

परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ।

शिलालेखों और धर्मलिपिओं से सम्राट् अशोक के मन्तव्यों और सिद्धान्तों का बहुत कुछ पता चल जाता है । हम संक्षेप से उनका यहां वर्णन करते हैं—

अपनी प्रजा को सम्राट् सचमुच अपने बच्चे समझता था और पितावत् उनके पालन और हितचिन्तन में रात दिन बड़े उत्साह और परिश्रम से लगा रहता था । यहां तक कि उसने सीमा प्रान्तों के रहनेवालों को भी अभय दान देकर उन्हें विश्वास दिलाने का यत्न किया कि वे भी सम्राट् से सुख और कल्याण की सदैव आशा रखें । सम्राट् की तरफ़ से उन्हें किसी प्रकार का कष्ट कभी न पहुंचेगा । हां वह भी सम्राट् के बताए हुए मार्ग पर चलने का यत्न करें । प्रत्येक मनुष्य को संयम, मानसिक पवित्रता और सचाई को धारण करना उचित है । स्वामिओं को अपने भृत्यों वा दासों पर दयाभाव रखना तथा उन्हें अपने स्वामिओं के प्रति आदर, भक्ति और कृतज्ञता का भाव धारण करना चाहिए । प्रत्येक मनुष्य को उचित है

कि क्रोध, द्रोह, ईर्ष्या तथा घमंड का परित्याग करदे तथा गुणों का ग्रहण करे। आत्मनिरीक्षण के विना अपने दोप दिखाई नहीं दे सकते, अतः प्रतिदिन अपनी परीक्षा आदमी को करनी उचित है। मन वचन और कर्म में सचाई को धारण करना योग्य है। प्राणियों की जान को भी अपनी तरह ही समझ कर उन पर अत्याचार न होना चाहिये।

सन्तानों को माता पिता की तथा दूसरे बजुर्गों की भक्ति करना उचित है, शिष्य गुरु का तथा युवक वृद्धों का सन्मान करने वाले हों। ब्राह्मण और श्रमणों तथा तपस्विओं का सब को आदर करना चाहिये। मित्रों, परिचितों, सम्बन्धियों, तथा तपस्विओं के प्रति उदारता का भाव रखना आवश्यक है, तथा यथाशक्ति देकर उनकी सेवा करनी चाहिए। धर्म के सच्चे स्वरूप का पालन सभी मत वाले करते हैं अतः सब को एक दूसरे के मत का आदर करना चाहिये, कोई किसी के मत की अवहेलना न करे, न अनुचित शब्दों का प्रयोग दूसरे मत के लिए कोई करे।

राजकर्मचारियों को भी अपने कर्त्तव्य के उचित रूप से पालने के योग्य बनने के निमित्त ईर्ष्या द्वेष, सख्ती,

और अधीरता को छोड़ने का सम्राट् ने आदेश कर रखा था। धैर्य तथा दृढ़ निश्चय द्वारा सब प्रलोभनों और आलस्य वा प्रमाद को त्यागने की बड़ी भारी ताकीद की गई थी। सम्राट् की धर्माज्ञाओं का यथायोग्य पालन किए विना किसी को उसकी प्रसन्नता लाभ करने की कोई आशा न थी। विजित कलिंग देशपर शासकों ने थोड़े बहुत आरम्भ में जो अत्याचार किये उनके लिए सम्राट् ने काफ़ी दण्ड दिया था। सम्राट् का मन्तव्य था कि तलवार की जीत की अपेक्षा धार्मिक विजय को पाना बहुत ज्यादा अच्छा है। उन दोनों विजयों का परस्पर में मुकाबिला हो ही नहीं सकता। इस लिए सीमाप्रान्त के लोगों को शक्ति रहते भी शस्त्रों से पराभूत न करके धार्मिक उपायों से वश में करने का यत्न किया था। पशुओं की पुकार तो सम्राट् ने ऐसी सुनी कि कोई क्या सुनेगा वा किसी ने क्या सुनी होगी। महानस के पशुओं का बध रोका गया, शिकार खेलने से हाथ रोका, और क्रमशः अहिंसामय वायुमण्डल के पैदा हो जाने से साम्राज्य में से पशुहिंसा को सर्वथा उड़ा दिया।

धार्मिक जगत् में सम्राट् अशोक जैसा उच्च सुधारक कोई विरला मिलेगा जिसे अपने मन्तव्यों की उच्चता के

साथ २ विस्तार तथा साफल्य भी उतने अंश तक नसीब हुआ हो। सच मुच ही संसार के इतिहास में सम्राट् अशोक का नाम सुवर्णाक्षरों से लिखा जाना चाहिए। सम्राट् की कीर्ति पताका तब तक अवश्य फैराएगी जब तक पृथ्वी मण्डल पर मनुष्यों का वास रहेगा, उनके शरीर के साथ दिमाग़ और सीना लगा रहेगा, और सीने में दिल मौजूद रहेगा।

सम्राट् अशोक के स्मारक।

यत्रानेके क्वचिदपि गृहे तत्रातिष्ठत्यथैको ।
यत्राप्येकस्तदनु बहवस्तत्र नैकोऽपि चान्ते ॥
इत्थं चेमौ रजनीदिवसौ दोलयन् द्वाविवाक्षौ ।
कालः काल्या भुवनफलके क्रीडति प्राणिसारैः ॥

सम्राट् अशोक ने अपने राज्यकाल में ईंट तथा विशेष कर पत्थर से काम लेते हुए जो कारीगरी का नमूना छोड़ा है वह उस समय के शिल्पियों के शिल्प तथा अशोक महाराज के वैभव के उत्कर्ष का उच्च स्वर से गान करता है। कारीगरी के इन नमूनों पर सम्राट् ने दिल खोलकर रुपया लगाया था। पत्थर की इमारतें थोड़े ही समय के अन्दर सम्राट् ने इतनी संख्या में बनवाईं, और उनमें ऐसी बढ़िया कारीगरी करवाई कि लोग उन्हें मनुष्य रचित न समझ कर देवनिर्मित समझने लगे। पाटलिपुत्र की परिखा के बाहिर पत्थर का मज़बूत प्राकार बनाने का वर्णन ऊपर हो चुका है। राजधानी के अन्दर अशोक का महल तथा अन्यान्य इमारत भी पत्थर की बनाई गईं थीं, और उन पर बनवाने वाले ने रुपया ख़र्च किया था और कारीगरों ने अपना कौशल। पांचवीं सदी के आरम्भ में फ़ाह्यान जब भारत में आया था तब अशोक का राज-

प्रासाद अभी खड़ा था। उसे देखकर चीनी यात्री ने चकाचौंध में आकर लिख दिया कि–"नगर के मध्य में महल तथा दालान उन देवताओं के बनाए हुए हैं जिन्हें सम्राट् ने नियुक्त किया था। उन देवों ने पत्थरों को इकट्ठा कर के दीवारों और द्वारों को बनाया। इन पर जो सुन्दर और बढ़िया खुदाई का काम उन्होंने किया है और जिन पत्थर की मूर्त्तियों को घड़ कर अन्दर रखा है उन्हें इस संसार के आदमी सर्वथा नहीं बना सकते"। शोक है कि विकराल काल के प्रभाव से सम्राट् का वह अद्भुत राजप्रासाद हमारी आंखों से ओझल हो चुका है। कुमारहार गांव के मकानों और खेतों के नीचे की धरती में वह समा चुका है। और जब तक दिल और रुपया लगा कर उसके उद्धार करने का उद्योग न किया जावेगा वह वहीं समाया रहेगा! लगभग दो सौ सालों के बाद जब दूसरा चीनी यात्री प्रसिद्ध ह्वनसांग भारत में आया उस समय पाटलिपुत्र का शहर उजड़ चुका था, क्योंकि सफ़ेद हूणों के अत्याचार से दरबार वहां से हट गया था, और खंडरात जमा हो रहे थे।

सम्राट् ने अनेक स्थानों पर जो शाही संघाराम तथा विहार बनवाए थे उनका भी वही हाल हो चुका है।

यात्रा का वर्णन तथा सिद्धान्त वा नीति आदि का उल्लेख मिलता है।

सब मिलाकर आज तक १३२ लेख सम्राट् अशोक के उपलब्ध हुए हैं जो निम्नलिखित पांच भागों में विभक्त हो सकते हैं। उनका विवरण नागरी प्रचारिणी पत्रिका ने इस प्रकार दिया है।

"(क) प्रधान शिलालेख।

(ख) गौण शिलालेख

(ग) प्रधान स्तम्भलेख।

(घ) गौण स्तम्भलेख।

(ङ) गुफा लेख।

अशोक ने अपने इन लेखों के लिए स्वयं 'धर्मलिपि' शब्द का प्रयोग किया है।

(क) प्रधान शिलालेखों में १४ प्रज्ञापन हैं। जो निम्नलिखित स्थानों में मिलते हैं।

१—चौंदहो प्रज्ञापन कालसी नाम के गांव से, जो संयुक्त प्रदेश के देहरादून ज़िले में है, लग भग डेढ मील दक्षिण की ओर जमुना और टोंस के संगम पर एक विशाल चट्टान पर खुदे हैं। इसी चट्टान पर लेखों के ऊपर हाथी की एक मूर्ति भी खुदी है। जिसके

नीचे 'गजतमो' (=सब से श्रेष्ठ गज) लिखा है।

२—चौदहों प्रज्ञापन काठियावाड़ में जूनागढ रियासत की उसी नाम की राजधानी से आध मील पर गिरनार की ओर जाने वाली सड़क पर, एक अलग खड़ी हुई चट्टान पर खुदे हैं। उसके पास ही सुदर्शन तालाब था। अशोक की धर्मलिपिया वाली चट्टान पर ही महाक्षत्रप राजा रुद्रदामन् के समय का शक संवत् ७२ में सुदर्शन तालाब के टूटने और पीछे उसकी पाल फिर बंधवाने का लेख तथा महाराज स्कन्धगुप्त का लेख भी खुदा है। यहां पर तेरहवें प्रज्ञापन के नीचे 'व स्वेतो हस्ति सवालोक सुखाहरो नाम' अर्थात् सब लोकों को सुख लादेने वाला श्वेतहस्ती' ये अक्षर खुदे हैं। बौद्धों के यहां श्वेतहस्ती अतिपवित्र और पूजनीय माना जाता है। बुद्ध की जन्मकथाओं में लिखा है कि उसकी माता मायादेवी को स्वप्न हुआ था कि एक श्वेतगज स्वर्ग से उतर कर उसके मुंह में घुसा और पीछे बुद्ध गर्भस्थ हुए इसी से श्वेतहस्ती बुद्ध का सूचक है। और कालसी' गिरनार और धौली की चट्टानों पर उसके नाम का उल्लेख तथा चित्र या मूर्ति दी गई है।

यात्रा का वर्णन तथा सिद्धान्त वा नीति आदि का उल्लेख मिलता है।

सब मिलाकर आज तक १३२ लेख सम्राट् अशोक के उपलब्ध हुए हैं जो निम्नलिखित पांच भागों में विभक्त हो सकते हैं। उनका विवरण नागरी प्रचारिणी पत्रिका ने इस प्रकार दिया है।

"(क) प्रधान शिलालेख।

(ख) गौण शिलालेख

(ग) प्रधान स्तम्भलेख।

(घ) गौण स्तम्भलेख।

(ङ) गुफा लेख।

अशोक ने अपने इन लेखों के लिए स्वयं 'धर्मलिपि' शब्द का प्रयोग किया है।

(क) प्रधान शिलालेखों में १४ प्रज्ञापन हैं। जो निम्नलिखित स्थानों में मिलते हैं।

१—चौंदहो प्रज्ञापन कालसी नाम के गांव से, जो संयुक्त प्रदेश के देहरादून ज़िले में है, लग भग डेढ मील दक्षिण की ओर जमुना और टोंस के संगम पर एक विशाल चट्टान पर खुदे हैं। इसी चट्टान पर लेखों के ऊपर हाथी की एक मूर्ति भी खुदी है। जिसके

नीचे 'गजतमो' (=सब से श्रेष्ठ गज) लिखा है।

२—चौंदहों प्रज्ञापन काठियावाड़ में जूनागढ रियासत की उसी नाम की राजधानी से आध मील पर गिरनार की ओर जाने वाली सड़क पर, एक अलग खड़ी हुई चट्टान पर खुदे हैं। उसके पास ही सुदर्शन तालाब था। अशोक की धर्मलिपिया वाली चट्टान पर ही महाक्षत्रप राजा रुद्रदामन् के समय का शक संवत् ७२ में सुदर्शन तालाब के टूटने और पीछे उसकी पाल फिर बंधवाने का लेख तथा महाराज स्कन्धगुप्त का लेख भी खुदा है। यहां पर तेरहवें प्रज्ञापन के नीचे 'व स्वेतो हस्ति सवालोक सुखाहरो नाम' अर्थात् सब लोकों को सुख लादेने वाला श्वेतहस्ती' ये अक्षर खुदे हैं। बौद्धों के यहां श्वेतहस्ती अतिपवित्र और पूजनीय माना जाता है। बुद्ध की जन्मकथाओं में लिखा है कि उसकी माता मायादेवी को स्वप्न हुआ था कि एक श्वेतगज स्वर्ग से उतर कर उसके मुंह में घुसा और पीछे बुद्ध गर्भस्थ हुए इसी से श्वेतहस्ती बुद्ध का सूचक है। और कालसी' गिरनार और धौली की चट्टानों पर उसके नाम का उल्लेख तथा चित्र या मूर्ति दी गई है।

३—इन प्रज्ञापनों की तीसरी प्रतिलिपि उड़ीसा के पुरी ज़िले में भुवनेश्वर से सात मील दक्खिन धौली नाम के गांव के पास अस्वत्थामा पहा ी की चट्टान पर खुदी है। यहां केवल ११ प्रज्ञापन हैं। ११वां १२वां और १३वां प्रज्ञापन नहीं है। इस चट्टान के ऊपर हाथी के सामने की आधी मूर्ति कोरकर बनाई हुई है। तथा यहां छठे प्रज्ञापन के अन्त में 'सेतो' (= श्वेतः) शब्द भी लिखा है।

४—चौथी प्रतिलिपि मद्रास प्रान्त के गंजाम नगर से १८ मील उत्तर पश्चिम को जौगढ़ के पुराने किले में एक चट्टान पर खुदी है। यहां भी केवल ११ प्रज्ञापन वर्तमान हैं। ११वां, १२वां, १३वां प्रज्ञापन नहीं हैं।

५—पांचवीं प्रतिलिपि चौदह प्रज्ञापनों की पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त के पेशावर ज़िले की यूसुफ़ज़ई तहसील में शाहवाज़गढी गांव के पास एक चट्टान पर खुदी मिली है। यह पहाड़ी पेशावर से ४० मील उत्तर पूर्व है।

६—छठी प्रतिलिपि पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत के हज़ारा ज़िले में अबटाबाद नगर से १५ मील उत्तर की ओर मान-

सेरा में मिली है। यहां दो चट्टानों पर केवल पहिले १३ प्रज्ञापन हैं, १४वां नहीं है।

७—सातवां स्थान जहां यह प्रज्ञापन मिलते हैं बम्बई प्रान्त के थाना जिले में सोपारा (प्राचीन शूर्पारक) नगर है। यहां केवल ८वें प्रज्ञापन का कुछ अंश मिला है। शहबाजगढी और मानसेरा की प्रतिलिपियां तो खरोष्ठी लिपि में खुदी हैं, जो दाहिनी ओर से बांई ओर लिखी जाती है। शेष पांचों स्थानों की प्रतिलिपियां ब्राह्मी लिपि में हैं।

(ख) गौण शिलाभिलेखों में (१) पहिले तो दो कलिंग प्रज्ञापन हैं जो धौली और जौगड़ में उन्हीं चट्टानों पर विद्यमान हैं।

(२) दूसरा प्रज्ञापन जो 'ब्रह्मगिरि प्रज्ञापन' के नाम से प्रसिद्ध है निम्न लिखित सात स्थानों पर मिलता है—

(१) ब्रह्मगिरि—उत्तर मैसूर के चितलदुर्ग ज़िले में।

(२) सिद्धापुर—उत्तर मैसूर के चितलदुर्ग ज़िले में।

(३) जतिंग रामेश्वर—उत्तर मैसूर के चितलदुर्ग ज़िले में।

(४) मासकी—निज़ाम राज्य के रायचूर ज़िले में।

(५) सहसराम—विहार के शाहाबाद ज़िले में।

(६) रूपनाथ—मध्यप्रदेश के जबलपुर ज़िले में।

(७) बैराट—राजपूताना के जयपुर राज्य में।

(३) तीसरा "भाबरा" प्रज्ञापन बैराटनगर (जयपुर राज्य) के पास की पहाड़ी पर के बौद्ध संघाराम में एक पत्थर पर खुदा था। यह पत्थर अब कलकत्ते की बंगाल एशियाटिक सोसाइटी के भवन में प्रिंसेप की मूर्ति के सामने सुरक्षित है।

(ग) प्रधान स्तम्भाभिलेख सात हैं और निम्नलिखित स्थानों में मिलते हैं—

(१) देहली सिवालिक—देहली के निकट फ़ीरोज़ाबाद के पुराने नगर के कटरे में एक स्तम्भ पर सातों प्रज्ञापन खुदे हैं। सन् १३५६ ई० में सुलतान फ़ीरोज़शाह तुगलक ने अंबाला ज़िले के टोपरा नामक स्थान से इस लाट को बड़े यत्न से उठवा कर यहां खड़ा कराया था।

(२) देहली–मीरट–देहली के पास छोटी पहाड़ी पर एक स्तम्भ पर दूसरा, तीसरा, चौथा और पांचवां प्रज्ञापन खुदा है। पहले प्रज्ञापन का भी कुछ अन्तिम अंश वर्तमान है। सन् १३५६ ई० में सुलतान फ़ीरोज़शाह तुगलक ने इस लाट को भी मेरट से उठवा कर 'कुश्क शिकार' (शिकार का महल) म

खड़ा करवाया था। यह गिर गया था, तब सन् १८६७ में भारत गवर्नमेंट ने इसे उसी स्थान के निकट पुनः खड़ा करवाया है।

(३) एलाहाबाद के किले में एक स्तंभ पर पहले ६ प्रज्ञापन विद्यमान हैं। ऐसा जान पड़ता है कि सुलतान फ़ीरोज़शाह तुगलक ने ही इस लाट को कौशांबी से उठवाकर यहां खड़ा करवाया हो। इसी लाट पर कौशाम्बी प्रज्ञापन और महारागी का प्रज्ञापन भी है। इसी पर सम्राट् समुद्रगुप्त का लेख खुदा है। यह स्तम्भ कई बार गिरा और खड़ा किया गया। जब यह नीचे पड़ा रहा तब लोग इस पर स्थान स्थान पर नाम संवत् आदि खोदते रहे। इस पर महाराजा बीरबल का भी लेख है।

(४) रधिया (लौरिया अरराज) बिहार के चम्पारन ज़िले के लौरिया नामक गांव के पास रधिया (रहरिया) से अढाई मील पर अरराज महादेव के मन्दिर से एक मील दक्षिण-पश्चिम में एक स्तम्भ पर पहिले ६ प्रज्ञापन हैं।

(५) मथिया—(लौरिया नवंद गढ) बिहार के चम्पारन ज़िले के लौरिया ग्राम के पास मथिया से ३ मील

'उत्तर को पहले ६ प्रज्ञापन एक स्तम्भ पर खुदे हैं।

(६) रामपुरवा—बिहार के चम्पारन जिले के रामपुरवा गांव के निकट केवल पहले चार प्रज्ञापन एक स्तम्भ पर वर्तमान हैं।

(घ) गौण स्तम्भाभिलेखों की संख्या पांच हैं। ये निम्नलिखित स्थानों में वर्तमान हैं:—

१—सारनाथ—बनारस से साढे तीन मील उत्तर सारनाथ के प्रसिद्ध स्थान में।

२—कौशाम्बी—एलाहाबाद किले में उसी स्तम्भ पर जिस पर ६ प्रधान स्तम्भाभिलेख हैं।

(देखो ऊपर ग २)

३—सांची—मध्यभारत के भोपाल राज्य के सांची नाम के स्थान में।

४—रुम्मिनी देई—नैपाल में भगवानपुर से २ मील उत्तर और बस्ती ज़िले के दुल्हा स्थान से ६ मील उत्तर-पूर्व।

५—निगलिवा—नैपाल तराई में बस्ती ज़िले के उत्तर निगलिवा सागर के किनारे उसी नाम के गांव के पास।

(ङ) अशोक के तीन गुहाभिलेखों का भी पता चला

है। ये बिहार के गया नगर के पास बराबर पहाड़ी पर हैं।

ऊपर जो वर्णन दिया गया है उससे स्पष्ट है कि अशोक की धर्मलिपियां उत्तर में पेशावर, दक्षिण में मैसूर, पूर्व में पुरी और पश्चिम में गिरनार तक मिलती हैं। इन चारों दिशाओं के अन्तिम स्थानों को यदि सरल रेखाओं से जोड़कर हिसाब लगाया जाय तो यह विदित होगा कि ये अशोक की धर्मलिपियां वर्तमान भारतवर्ष के दोतिहाई भाग से अधिक पर फैली हुई हैं"।

(भाग १ पृ० ३३७ से ३४१)

शिलालेखों का हिन्दी अनुवाद ।

तदोजसस्तद्यशसः स्थितावि मौ वृथेति चित्ते कुरुते यदा यदा ।
करोति भानोः परिवेषकैतवात्तदा विधिः कुण्डलनां विधोरपि ॥

(श्रीहर्ष)

सम्राट् अशोक के अलौकिक और दिव्य चरित्र के मुख्य आधार उसके शिलालेख हैं जो 'पाली' भाषा में हैं। विद्वानों ने सर्व सम्मति से उसका नाम पाली रखा है और हमें भी वैसा ही व्यवहार करना चाहिये । परन्तु यह भी साथ ही समझ लेना चाहिए कि इन की भाषा वास्तव में सर्वथा एक नहीं, प्रत्युत उस समय की उस उस प्रान्त की प्राकृत या साधारण बोल चाल की भाषा इन शिलालेखों में बरती गई है । अस्तु ! इन शिलालेखों का समावेश सम्राट् के जीवन के सम्बन्ध में लिखे गये पुस्तकों में होना अत्यावश्यक ही नहीं, हमारी सम्मति में अनिवार्य है । तो भी उनके हिन्दी रूपान्तर से ही हम अपने पाठकों का सन्तोष कराना चाहते हैं । हां यथासाध्य हम उस अनुवाद को पाठकों के भेंट करेंगे जिसकी प्रामाणिकता और औचित्य में किसी को सन्देह न हो सके। इसलिये नागरी प्रचारिणी पत्रिका में मुद्रित १४ लेखों के अनुवाद की

प्रतिलिपि हम यहां देते हैं। यह अनुवाद रायबहादुर पण्डित गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा, बाबू श्यामसुन्दरदास बी०ए० और पण्डित चन्द्रधर शर्म्मा गुलेरी बी०ए०, की कृति है। हिन्दी के उच्चतम सेवक यह तीनों स्वनामधन्य महाभाग हिन्दी जगत् में इतने लब्धप्रतिष्ठ हैं कि इनके परिश्रम से लाभ न उठाना जहां अपने आपको धोखा देना है वहां इनके अनुवाद के रहते अनुवादान्तर करने का यत्न करना सूर्य के समक्ष खद्योत के दुस्साहस के समान है। इसलिए हम यहां पर इन्हीं महानुभावों का अनुवाद नागरी प्रचारिणी पत्रिका के तीन वर्षों (संवत् १९७७–७८–७९) के अंकों से उद्धृत कर के पाठकों की सेवा में भेंट करते हैं।

"(क) प्रधान शिलाभिलेख।

[क–१ पहला प्रज्ञापन।]

[हिन्दी अनुवाद।]

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने यह धर्मलिपि लिखवाई। यहां (इस राज्य में) कोई जीव मार कर होम (बलि) न करना चाहिये और न समज करना चाहिये। देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा समाज में अनेक दोषों को देखता है, यद्यपि कुछ समाज (ऐसे) हैं (जो) देव-

ताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा को अच्छे लगते हैं। पहले देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के रसोई घर में शोरबा बनाने के लिए प्रतिदिन हज़ारों जीव मारे जाते थे, पर आज से जब यह धर्मलिपि लिखी गई है केवल तीन जीव (अर्थात्) दो मोर और एक हरिण मारे जाते हैं, (इन में भी) हरिण (का मारना) नियत नहीं है। भविष्यत् में यह तीन जीव भी नहीं मारे जाएंगे।

[क २—दूसरा प्रज्ञापन।]

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के जीते हुए सब स्थानों में तथा और जो सीमांत प्रदेश हैं जैसे चोड़, पाण्ड्य, सत्यपुत्र, केरलपुत्र, (और) ताम्रपर्णी (तक के प्रदेशों में) तथा अंतियोक (ऐंटिओकस) नाम के यवन राजा और जो अन्य राजा उस (अंतियोक) के सामन्त (या समीप) राजा [हैं उन के यहां] सब स्थानों में देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने दो (प्रकार की) चिकित्साओं (का प्रबन्ध) किया है,—(एक) मनुष्यों की चिकित्सा और (दूसरी) पशुओं की चिकित्सा। मनुष्यों और पशुओं की उपयोगी ओषधियां जहां जहां नहीं हैं वहां वहां (वे) लाई गईं और लगाई गईं। इसी प्रकार मनुष्य तथा पशुओं के उपभोग के लिए जहां जहां फल

और मूल नहीं हैं वहां वहां (वे) लाए गए और लगाए गए) और मार्गों में कुँए खुदवाए गए तथा पेड़ लगवाए गए ।

[क ३—तीसरा प्रज्ञापन ।]

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा है (कि) अभिषिक्त होने के बारहवें वर्ष मैंने यह आज्ञा दी (कि) मेरे जीते हुए सब राज्य में युक्त, रज्जुक, और प्रादेशिक प्रति पांचवें वर्ष जैसे दूसरे (शासन सम्बन्धी) कामों के लिए दौरा करते हैं वैसे इस धर्मानुशासन के लिये भी दौरा करें (कि) माता पिता की और मित्रों परिचित (प्रशंसित) लोगों, सम्बन्धियों, ब्राह्मणों और श्रमणों की सेवा (करना) अच्छा है, थोड़ा व्यय करना और थोड़ा बटोरना अच्छा है । परिषदें (सभाएं) भी अधीनस्थ अधिकारियों को (धर्मानुशासन के) उद्देश्य और अर्थ के अनुसार जांच पड़ताल करने के लिये आज्ञा देंगी ।

[क ४—चौथा प्रज्ञापन ।]

बहुत काल बीत गया, सैंकड़ों वर्ष (बीत गए) (पर) प्राणों का नाश, जीवों की हिंसा, (और) सम्बन्धियों, श्रमणों तथा ब्राह्मणों का अनादर बढ़ता ही गया.। सो

आज देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्माचरण से भेरीनाद तथा धर्म का घोष हुआ, तथा प्रजा को विमानों के दर्शन, हाथियों के दर्शन, अग्निस्कन्ध, और दूसरे दिव्य रूपों के दर्शन कराए गए। जैसा सैंकड़ों वर्ष पहले से (कभी) नहीं हुआ था वैसा देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्मानुशासन से आज कल प्राणियों का न मारा जाना, जीवों की अहिंसा, सम्बन्धियों, ब्राह्मणों तथा श्रमणों का आदर, माता पिता और वृद्धजनों की सेवा बढ़े है। ये तथा दूसरे अनेक प्रकार के धर्माचरण बढ़े हैं। देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा इस धर्माचरण को (और भी) बढ़ावेगा। देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र इस धर्माचरण को कल्पांत तक बढ़ावेंगे, तथा धर्म और शील में (स्थित) रहते हुए धर्म का अनुशासन करेंगे (क्योंकि) धर्मानुशासन ही श्रेष्ठ कर्म है। विना शीलवाले का धर्माचरण भी नहीं होता है। इस लिये इस बात की बढ़ती होना तथा घटती न होना श्रेष्ठ है। इसी प्रयोजन से यह लिखा गया कि (लोग) इस उद्देश्य की वृद्धि में लगें, और उसकी हानि (घटती) न देखें। राज्याभिषेक के बारहवें वर्ष देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने यह (प्रज्ञापन) लिखाया।

[क ५—पांचवां प्रज्ञापन ।]

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा है । कल्याण (करना) कठिन है । जो कल्याण (या कल्याण का आरम्भ) करता है (या कल्याण का आरम्भ कर्ता होता है) वह कठिन काम करता है । सो मैंने बहुत कल्याण किया । इस लिये यदि मेरे पुत्र, पौत्र तथा उन से आगे जो मेरे वंशज होंगे वे कल्पांत तक वैसा अनुसरण करेंगे (तो) सुकृत करेंगे । जो इस आज्ञा के अंशमात्र में भी हानि पहुंचावेंगे वे बुरा काम करेंगे, क्योंकि पाप सहज में फैलता है (या पाप करना सहज है) । बहुत काल बीता कि धर्ममात्र नहीं नियत हुए । इस लिये मैंने अभिषिक्त होने के तेरहवें वर्ष धर्ममहामात्र नियत किये । वे सब धर्मों के लिये नियुक्त हैं । वे धर्म के अधिष्ठान (=ऊपर देखभाल) और धर्म की वृद्धि तथा धर्मानुयायी लोगों के हित और सुख के लिये हैं । वे यवनों, कम्बोजों, गांधारों राष्ट्रिकों, पैठनिकों तथा पश्चिमी सीमाप्रांत पर रहने वाले दूसरे लोगों के, वेतन भोगी नौकरों, ब्राह्मणों, और धनवानों, अनाथों और बुड्ढों के हित और सुख तथा अधीनस्थ धर्माधिकारियों की (=से ?) बाधा न पहुचने के लिए नियुक्त हैं । वे कैद करने और प्राणदण्ड देने को

नियन्त्रित करने, बाधा को दूर करने और छुड़ाने के लिए नियुक्त हैं। यह अनुबन्ध (अधिकार) बाल बच्चों वालों, या जो राज्याधिकार कर चुके हैं, या बूढ़ों (ही) के लिए नियत हैं। (ऐसे मनुष्य ही इस पर नियत किये गए हैं) ये लोग यहां पाटलिपुत्र में तथा बाहर के सब नगरों में मेरे तथा मेरे भाई और बहनों के महलों तथा दूसरे सम्बन्धियों के लिए सब जगह नियुक्त हैं वे धर्ममहामात्र हैं। इस लिये यह धर्म लिपि लिखवाई। (यह) चिरस्थायी रहे तथा मेरी प्रजा इसका अनुसरण करे।

[क ६–छठा प्रज्ञापन।]

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा है। बहुत दिन बीत गए [कि] सब समय में राजा का कार्य और (राजा के सामने प्रजा की) विज्ञप्ति नहीं होती, इसलिए मैंने इस प्रकार (प्रबन्ध) किया कि सब समय में, चाहे मैं खाता होऊं, चाहे महल में होऊं, चाहे निज महल में, चाहे टहलने में, चाहे [स्थान स्थान पर बदलने वाली सवारी की) डाक से लम्बी यात्रा में और चाहे बगीचे में, सर्वत्र प्रतिवेदक प्रजा के कार्य की (मुझे) सूचना दें। मैं सब जगह प्रजा का कार्य करता हूं (करूंगा)। दिलाने वाले और सुनाने वाले अधिकारियों

को जो कुछ आज्ञा मैं मुंहज़बानी दूं, (या दान देने की, या सुनाये जाने की जो कुछ आज्ञा मैं मुंहज़बानी दूं,) उसके विषय में, या अत्यन्त आवश्यकता पर (मुझे विना पूछे या मेरी अनुपस्थिति में) जितना अधिकार महामात्रों को दिया गया है [या अत्यन्त आवश्यकता पड़ने पर महामात्र जिस विषय में निश्चय करें] उसके संबन्ध में संदेह या मतभेद और पुनर्विचार होने पर (मन्त्रि–) परिषद विना विलम्ब के सब जगह और सब समय मुझे सूचित करे। इस प्रकार मैंने आज्ञा दी। (क्योंकि) उद्योग करने में और (राज) कार्य चलाने के लिये मुझे सन्तोष नहीं होता। सब लोगों की भलाई करना ही मैंने कर्त्तव्य माना है और उस (सर्व लोक हित) का मूल उद्योग और (राज-) कार्य संचालन है। सब लोगों की भलाई के अतिरिक्त मुझे अधिक करणीय काम कोई नहीं है। जो कुछ पराक्रम मैं करता हूं वह क्यों ? इसी लिये कि जीव धारियों के ऋण से मुक्त होऊं, कुछ (प्राणियों) को इस लोक में सुख देऊं, (जिस में) वे दूसरे लोक में स्वर्ग (=सुख) प्राप्त करें (या, अपने अथवा उनके लिये स्वर्ग प्राप्त करने को)। इसी प्रयोजन से यह धर्म लिपि लिखवाई। यह चिरस्थायी हो तथा मेरे स्त्री, पुत्र, पौत्र,

प्रपौत्र सब लोगों की भलाई के लिये उद्योग करें। बिना अत्यधिक प्रयत्न के यह (सब लोगों का हित) दुष्कर है। है। सफ़ेद (हाथी)।

[क ७–सातवां प्रज्ञापन]

देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा चाहता है कि सब धर्म वाले सर्वत्र बसें। वे सब ही संयम और भाव शुद्धि चाहते हैं। मनुष्यों के ऊंच नीच विचार और ऊंच नीच (अनु) राग होते हैं। वे (अपने अपने धर्म का) पूरी तरह (पालन करेंगे) अथवा (उसका) कोई अंश (पालन) करेंगे। जिसके (यहां करने को) बहुत दान नहीं है उसमें भी संयम, भाव शुद्धि, कृतज्ञता और दृढ़ भक्ति तो अवश्य ही नित्य हैं अर्थात् विद्यमान हैं।

(क ८–आठवां प्रज्ञापन)

बहुत काल बीत गया (कि) देवताओं के प्रिय राजा लोग विहार यात्रा के लिये निकलते थे। इस (यात्रा) में शिकार तथा वैसा ही मन बहलाने वाली दूसरी बातें होती थीं। देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने अभिषिक्त होने के १०वें वर्ष में सम्यक् ज्ञान के मार्ग पर पैर धरा (बोधितीर्थ की यात्रा की, या वह सम्यक् ज्ञान को प्राप्त हुआ) इससे यह धर्म यात्रा चली। इसमें यह होते

हैं (कि) श्रमणों और ब्राह्मणों का दर्शन, उन्हें दान, बूढ़ों का दर्शन, सोने का वितरण, जनपद (=राज्य) के लोगों का दर्शन, धर्म का उपदेश और धर्म विषय की जिज्ञासा' उस (पहले की विहार यात्रा) से यह (धर्म यात्रा) बहुत ही आनन्द दायक होती है। देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा का भाग (=हिस्सा) ही दूसरा है (अर्थात् उसकी बात ही निराली है)।

[क ९–नवां प्रज्ञापन।]

देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा इस प्रकार कहता है। लोग ऊंचा नीचा (=थोड़ा बहुत) मंगल (कार्य) करते हैं। बीमारी, बुलावे, (न्योते) विवाह, पुत्रजन्म, परदेस जाने, तथा और ऐसे ही दूसरे अवसरों पर मनुष्य बहुत मंगल (कार्य) करता है। ऐसे अवसरों पर बच्चे बालियां (स्त्रियां) अनेक प्रकार के छोटे और निरर्थक मंगल कार्य करती हैं। ये मंगल कार्य अवश्य करने चाहियें किन्तु इनका फल थोड़ा होता है। इस दूसरे अर्थात् धर्म मंगल से तो निश्चय बड़ा फल होता है। उस धर्म मंगल में यह बातें हैं कि जन्म से दास और वेतन भोगी नौकरों से उचित व्यवहार, गुरुओं की पूजा, प्राणों का संयम प्राणियों पर दया, श्रमणों और ब्राह्मणों को दान, यह

तथा ऐसे ही दूसरे कार्य धर्म मंगल के कार्य हैं। इसलिए पिता, पुत्र, भाई, स्वामी, मित्र और परिचित यहां तक कि पड़ोसी भी यह उपदेश करें कि जब तक अर्थ की सिद्धि न हो।

[कालसी, शाहबाज़गढ़ी और मानसेरा का पाठ]

तब तक या सिद्ध होने पर भी यहीं धर्म मंगल करना उत्तम है, कर्त्तव्य है। यह ऐसा क्यों है क्योंकि इस संसार में दूसरे मंगल कार्यों का फल संदिग्ध है। शायद वह फल को सिद्ध करे शायद नहीं भी करे। अथवा यह इसका फल केवल इसी लोक में हो, पर यह धर्ममंगल तो काल, समय से परिछिन्न नहीं है। चाहे किसी विशेष अर्थ को सिद्ध न करे तो भी यहां अर्थ और परलोक में अनन्त पुण्य उत्पन्न करता है। यदि इस संसार में भी फल सिद्ध कर दिया तो दोनों लाभ हुए। इस धर्ममंगल से इस संसार में भी वह चाहा हुआ फल मिला और परलोक में भी अनन्त पुण्य उत्पन्न हुआ।

[गिरनार, धौली और जौगढ़ का पाठ।

तब तक यह धर्ममंगल करना उत्तम है, कर्त्तव्य है, यह भी कहा है कि दान उत्तम है, किन्तु कोई दान वा अनुग्रह ऐसा नहीं है जैसा कि धर्मदान और धर्मानुग्रह

इसे मित्र, सुहृद्, कुटुम्बियों और सहायकों को समय २ ज़ोर देकर अवश्य कहना चाहिये कि यह कर्त्तव्य है, यह उत्तम है, इससे स्वर्ग की प्राप्ति होसकती है। इससे बढ़ कर अधिक कर्त्तव्य और क्या होसकता है कि स्वर्ग की प्राप्ति हो।

[क १०—दसवां प्रज्ञापन।]

देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा यश या कीर्ति को परलोक के लिये बहुत काम की वस्तु नहीं मानता, जो वह यश या कीर्ति को चाहता है तो इसीलिए कि मेरी पूजा वर्तमान और भविष्यत् में (के लिये) सदा धर्म की शुश्रूषा करे और धर्म व्रत का पालन करे। इसलिये देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा यश वा कीर्ति की इच्छा करता है। देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा जो कुछ पराक्रम करता है वह सब परलोक के लिए करता है। क्यों ? इसलिए कि जिस में सब लोग दोष रहित हों। यही दोष है कि अपुण्य (पुण्य न करना), यह (अपुण्य से रहित होना) विना बड़े भारी पराक्रम के छोटे या बड़े जनवर्ग के लिए अवश्य दुष्कर है। चाहे (मनुष्य) सब कुछ छोड़ दे पर (या सब कुछ छोड़ कर भी) यह तो छोटे बड़े सब के लिए दुष्कर है। बड़े के लिए तो और भी दुष्कर है।

[क ११—ग्यारहवां प्रज्ञापन ।]

देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहता है। जैसा धर्म का दान, धर्म का व्यवहार, धर्म का लेन देन और धर्म का सम्बन्ध है वैसा और कोई दान नहीं है । इस में ये ये बातें होती हैं, दास और वेतन भोगी सेवकों से अच्छा बरताव, माता पिता की सेवा, मित्र, परिचित (संगी साथी) सम्बन्धी, श्रमणों और ब्राह्मणों को दान, तथा प्राणों की अहिंसा, पिता, पुत्र, भाई, स्वामी, मित्र, परिचित (संगी साथी) सम्बन्धी, यहां तक कि पड़ौसी, सब को यह कहना चाहिये, कि यही (दान) उत्तम है, यही कर्त्तव्य है । ऐसा करता हुआ यह (मनुष्य) इस लोक की (सब बातों) को सिद्ध करता और उसी धर्म-दान से परलोक में अनन्त पुण्य को उत्पन्न करता है ।

[क १२—बारहवां प्रज्ञापन ।]

देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा सब धर्म वालों का, (चाहे वे) त्यागी (हों चाहे) गृहस्थ, दान और अनेक प्रकार की पूजा से सत्कार करता है । दान या पूजा को देवताओं का प्रिय इतना नहीं मानता जितना कि क्या ? यह कि सब धर्मवालों की सारवृद्धि (= सत्व की बढ़ती) हो । सारवृद्धि कई प्रकार की होती है । इसका

मूल वाणी का संयम है; (क्योंकि) जिस से अपने धर्म वालों का (अति) आदर और दूसरे धर्म वालों की निन्दा न हो और विना प्रयोजन उन की हलकाई न की जाये। (या उनकी ओर ओछापन न दिखाया जाये।) अवसर अवसर पर भिन्न भिन्न रीति से दूसरे धर्म वाले (भी) आदर के योग्य हैं। जो ऐसा करता है (अर्थात् अपने से भिन्न धर्म वालों का आदर करता है) वह अपने धर्म की बहुत निश्चय उन्नति करता है। और साथ ही दूसरे धर्म वालों का भी उपकार करता है। जो इसके विपरीत करता है वह अपने धर्म को क्षीण और परधर्म का अपकार करता है। जो कोई अपने धर्म वालों का आदर और दूसरे धर्म वालों का अनादर करता है वह अपने धर्म का भक्ति से ही करता है। क्यों ? कि जिस में अपने धर्म का प्रकाश हो। किन्तु वैसा करने से वह अपने धर्म को अत्यन्त हानि पहुंचाता है। इस लिये आपस का मेल जोल ही अच्छा है। कि लोग एक दूसरे के धर्म को सुनें और उसकी शुश्रूषा करें। यही देवताओं का प्रिय चाहता है। क्या ? कि सब धर्म वाले बहुश्रुत हों और उनका ज्ञान कल्याणमय हो, या उनका परिणाम अच्छा हो। जो लोग जिस २ धर्म पर दृढ़ जमे हुए हों वे यह

कहें कि देवताओं का प्रिय दान और पूजा को वैसा नहीं मानता जैसा क्या ? सब धर्म वालों की सारवृद्धि और बड़ाई हो। इसी उद्देश्य से धर्ममहामात्र, स्त्रियों के अध्यक्ष महामात्र, व्रजभूमिक, तथा दूसरी संस्थाएं (अधिकारी) नियत हैं। इसका फल यह है कि अपने मत की उन्नति और धर्म का प्रकाश होता है।

[क १३—तेरहवां प्रज्ञापन]

अभिषिक्त होने के ८वें वर्ष देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने कलिंगों को जीता। यहां से डेढ़ लाख प्राणी बाहर ले जाए गए। एक लाख आहत हुए और उस से अधिक (संख्या में) मरे। इस के अनन्तर जीते हुए कलिंगों में देवताओं के प्रिय का खूब धर्मविस्तार, धर्मकामना और धर्मानुशिष्टि हुई। इस पर कलिंगों को जीतने वाले देवताओं के प्रिय को बड़ा पछतावा होता है, (क्योंकि) जहां लोगों का बध, मरण या देश निकाला हो उस देश को मैं जीतने पर भी नहीं जीता हुआ मानता हूं। यह (बध आदि) देवताओं के प्रिय को अत्यन्त दुःखद और भारी जान पड़ता है। यह देवताओं के प्रिय को और भी भारी जान पड़ता है (क्योंकि) वहां सर्वत्र ब्राह्मण, श्रमण दूसरे धर्मवाले तथा गृहस्थ रहते हैं, जिन में सब से पहले

भरण पोषण विहित है, जिन में माता पिता की शुश्रूषा, गुरु की शुश्रूषा, मित्र, परिचित, सहायक, सम्बन्धी तथा नौकरों चाकरों को उचित आदर और उनकी ओर से दृढ़ भक्ति का विधान है। ऐसे लोगों का वहां घात, बध या सुख से रहते हुओं का देश निकाला होता है। जिन सुव्यवस्थित लोगों का स्नेह नहीं घटा है, उन के मित्रों, परिचितों, सहायकों तथा कुटुम्बियों को दुःख होता है। (इसलिये) उनका भी उपघात होता है। यह दशा सब मनुष्यों की है पर देवताओं के प्रिय को यह अधिक दुःखद जान पड़ती है। कोई ऐसा जनपद नहीं है जहां ब्राह्मण और श्रमण आदि के अनन्त सम्प्रदाय न हों। ऐसा कोई जनपद भी नहीं है जिस में मनुष्यों की किसी न किसी धर्म में प्रीति न हो। जितने मनुष्य कलिंग विजय (प्राप्ति) के समय आहत हुए, मारे गए, और बाहर निकाले गए, उनका सौवां अथवा हज़ारवां भाग भी (यदि) आहत होता, मारा जाता या निकाला जाता तो आज देवताओं के प्रिय को भारी दुःख देनेवाला होता। देवताओं के प्रिय का मत है कि जो अपकार करता है वह भी क्षमा के योग्य है यदि वह क्षमा किया जा सके। जो वननिवासी देवताओं के प्रिय के विजित देश में हैं

उनको भी वह मनाता और उनका ध्यान रखता है कि जिस में देवताओं के प्रिय को पछतावा न हो। वे अपने कर्म्मों पर लज्जित हों और नष्ट न हों। देवताओं का प्रिय सब जीवों की अक्षति, संयम, समचर्या तथा प्रसन्नता चाहता है। जो धर्म की विजय है वही देवताओं के प्रिय की मुख्य विजय है। यह विजय देवताओं के प्रिय को यहां (अपने राज्य में) तथा सब सीमांत प्रदेशों में छः सौ योजन तक जिस में अन्तियोकस नामवाला यवन राजा तथा अन्य चार राजा—तुरमय, अन्तकिन, मग तथा अधिक सुन्दर (के राज्य) हैं, तथा जिस से दक्षिण की ओर चोड़, पांड्य, ताम्रपर्णी वाले हैं प्राप्त हुई। यहां विष, वृज्जि, यवन, कम्बोज, नाभितियों, भोजों, पैठनिकों अन्ध्र, पुलिंद आदि सब (के) देशों में देवताओं के प्रिय का धर्मानुशासन माना जाता है। जहां देवताओं के प्रिय के दूत नहीं जाते वहां के लोग भी देवताओ के प्रिय के धर्मव्रत, धर्मविधान और धर्मानुशासन को (अपने राज्य मे) सुनकर उसका अनुसरण करते हैं। और बराबर करेंगे। अब तक (इस प्रकार की) जो विजय प्राप्त हुई है उस प्रेम की विजय से आनन्द होता है पर यह आनन्द हलका है। देवताओं का प्रिय उस (आनन्द) को महाफलदायक

मानता है जो परलोक से सम्बन्ध रखता है। इसीलिए मैंने यह धर्मलिपि लिखवाई कि जिस में मेरे पुत्र और प्रपौत्र शस्त्रों द्वारा प्राप्त नयी विजय को प्राप्त करने योग्य न मानें। शान्ति और लघुदण्डता में रुचि रखें और धर्म की विजय को ही विजय समझें। क्योंकि वह इस लोक और परलोक (दोनों) में फल देनेवाली होती है। उद्यम में रति ही सब प्रकार की जीत है (क्योंकि) वह इस लोक और परलोक (दोनों) में फल देनेवाली है।

[क १४—चौदहवां प्रज्ञापन।]

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने यह लिपि लिखवाई। (इन में से) कोई संक्षिप्त है कोई मध्यम है (और) कोई विस्तृत है। क्योंकि सब जगह एक सी नहीं ठीक होती। बड़े बड़े लोक (देश) जीते और बहुत कुछ लिखाया तथा निरन्तर लिखवाऊंगा। इन में (कहीं कहीं एक ही बात) फिर फिर लिखी गई है। (इसका कारण उसके अर्थ की मधुरता है जिसमें लोग उसका प्रतिपादन करें। यह हो सकता है कि कुछ अंश को विचारने योग्य समझ कर कुछ अधूरा लिखा गया हो। इसमें लिपि कर का (भी) दोष (हो सकता है)।

उपरोक्त चौदह पहाड़ी लेखों के अतिरिक्त अशोक

ने समय समय पर दूसरी सूचनाएं भी खुदवाई थीं। उनमें से एक सूचना धौली में, दो जोगड़ में, एक खण्ड-शिलालिपि सिद्धपुर में एक सूचना सहसराम में एक रूपनाथ में, एक विराट (दिल्ली के दक्षिण पश्चिम में और तीन शिलालेख मैसूर में मिले हैं। इनके सिवा गुफाओं के शिलालेख अलग हैं। यद्यपि इन सब शिलालेखों का अनुवाद देना यहां पर आवश्यक है, पर इससे पुस्तक के बहुत बढ़ जाने का डर है, इन सब शिलालेखों को दिया जाय तो एक स्वतन्त्र ग्रन्थ बन सकता है। उपरोक्त चौदह धर्मलिपियां बहुत आवश्यक थीं, इसलिये उनका अनुवाद ऊपर दे दिया गया है। शेष आठ स्तम्भ लिपियां भी बहुत आवश्यक समझी जाती हैं अतः उनका अनुवाद 'भारत के हिन्दु सम्राट' नामक पुस्तक से नीचे दिया जाता है।

पहली स्तम्भ लिपि।

देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं। अपने राज्याभिषेक के छब्बीसवें वर्ष में मैंने यह सूचना खुदवाई है। प्रगाढ़ धर्मानुराग, विशेष आत्मपरीक्षा, पूर्ण आज्ञापालन, प्रगाढ़ अध्यवसाय और धर्मभय के बिना मेरे कर्मचारियों को ऐहिक और पारलौकिक सुख मिलना कठिन है।

मेरे उपदेश के कारण उन लोगों में स्वतः धर्म के प्रति आदर और अनुराग बढ़ रहा है। मेरे कर्मचारी गण क्या उच्च श्रेणी के क्या मध्यम श्रेणी के और क्या निम्न श्रेणी के सभी मेरे उपदेश के अनुसार कार्य करते हैं, और भविष्य में करेंगे। चञ्चलमति लोगों में धर्मानुराग बढ़ाने की व्यवस्था भी वे लोग करते हैं।

उसी प्रकार सीमाप्रान्त के मन्त्रीगण (अन्त महामात्र) भी धर्मप्रचार करते हैं। इस उपाय के द्वारा मेरे उद्देश्य धर्मानुसार पालन, धर्मानुसार शासन, धर्मानुसार उन्नति और धर्मानुसार रक्षा—अनायास ही सिद्ध होते है।

दूसरी स्तम्भ लिपि।

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं—धर्म उत्तम है पर यह पूछा जा सकता है कि धर्म है क्या पदार्थ? धर्म थोड़ी सी थोड़ी बुराई और अधिक से अधिक भलाई करने में है। धर्म दया, दान, सत्य और पवित्र जीवन में है। इसलिये मैंने मनुष्यों, चौपायों, पक्षियों और जल जन्तुओं के निमित्त सब प्रकार के दान दिये हैं। मैंने उनके हित के लिये बहुत से कार्य किये हैं। यहां तक कि उन के पीने के लिये जल का भी प्रबन्ध किया है। मैंने इस उद्देश्य से इस सूचना को खुदवाया

है कि जिस से लोग उसके अनुसार चलें और सत्यपथ को ग्रहण करें। यह कार्य बहुत ही उत्तम और प्रशंसनीय है।

[तीसरी स्तम्भलिपि]

देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं—मनुष्य केवल अपने अच्छे कामों को देखता है और कहता है कि मैंने अमुक उत्तम कार्य्य किया है। पर वह कभी अपने बुरे कामों को नहीं देखता, वह कभी यह नहीं कहता कि मैंने अमुक पाप किया। यद्यपि यह सत्य है कि इस प्रकार की जांच दुःखप्रद है तथापि यह आवश्यक है कि अपने मन में यह प्रश्न किया जाये और यह निश्चय कर लिया जाये कि दुष्टता, निर्दयता, क्रोध, अभिमान तथा इसी प्रकार के दूसरे दुष्कृत्य पाप हैं। सावधानी के साथ अपना आत्म निरीक्षण करते रहना आवश्यक है। हृदय के अन्दर हमेशा इस प्रकार की भावनायें रखना चाहिये कि मैं कभी दूसरों से ईर्षा न करूंगा अथवा उनकी निन्दा न करूंगा। इस प्रकार का कार्य्य मेरे लिये इस लोक और परलोक दोनों स्थानों में लाभप्रद होगा।

[चौथी स्तम्भ लिपि।]

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं अपने राज्याभिषेक के सोलहवें वर्ष में मैंने यह सूचना खुदवाई

है। मैंने अपने लाखों प्रजागणों के लिये रज्जुकों को नियुक्त किया है। रज्जुकों को दण्ड देने का अधिकार मैंने स्वयं अपने हाथ में रक्खा है जिस से कि वे पूरी दृढता के साथ मेरे राज्य के लोगों की भलाई और उन्नति करें। प्रजा के सुखों और दुःखों की वे बराबर जांच करते रहते हैं और धर्मयुतों के साथ रह कर वे मेरे राज्य के लोगों को शिक्षा देते हैं। जिससे कि, लोग इहलोक में सुख और भविष्यत् में मुक्ति प्राप्त कर सकें। रज्जुक लोग मेरी आज्ञा का पालन करते हैं। पुरुष लोग भी मेरी इच्छा और आज्ञाओं का पालन करते हैं और मेरे उपदेशों का प्रचार करते हैं जिस में रज्जुक लोग सन्तोषजनक कार्य्य करें। जिस प्रकार कोई मनुष्य अपने बच्चे को किसी सचेत दाई के हाथ में सौंप कर निश्चिन्त रहता है और सोचता है कि मेरा बच्चा सचेत दाई के पास है, उसी भान्ति मैंने भी अपनी प्रजा के लिये रज्जुकों को नियुक्त किया है और जिसमें वे दृढता और रक्षा के साथ विना किसी चिन्ता के अपना कार्य्य करें, मैंने उनको अभियुक्त करने और दण्ड देने का अधिकार स्वयं अपने हाथ में रक्खा है। अभियुक्त बनाने और दण्ड देने में समान दृष्टि से काम लेना आवश्यक है। इस लिये आज की तिथि से

यह नियम किया जाता है कि जिन कैदियों का न्याय हो जाय और जिन्हें फांसी की सज़ा का दण्ड मिले, उन्हें तीन दिन की अवधि दी जाये और उनको सूचना देदी जाय कि वे तीन दिन जीवित रहेंगे न इस से अधिक और न इस से कम। इस बीच में वह परलोक साधन के लिये जितना दान पुण्य करना चाहें कर लें। मेरी इच्छा है कि कारागार में भी उन्हें भविष्यत् का निश्चय दिलाया जाय और उस के साथ मेरी यह भी दृढ इच्छा है कि मैं प्रजा के अन्तर्गत इन्द्रिय दमन और दानशीलता के भाव देखूं।

[पांचवीं स्तम्भलिपि]

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं—अपने राज्याभिषेक के छब्बीसवें वर्ष के उपरान्त मैंने निम्नलिखित जानवरों के मारे जाने का निषेध किया है। तोता, मैंना, अरुण, चक्रवाक, हंस, नन्दिमुख, गैरन, चमगीदड़, अंबक, पिल्लिक, दद्रि, अनस्थिक, मछली, वेदवेयक, गंगा नदी के पुप्पुत, संकुज, कफ़तसयक, पमनसस, सिमल, संदक, ओकपिंड, पलसत, स्वेत कपोत, ग्राम कपोत, और सब चौपाए जो किसी काम नहीं आते और खाए भी नहीं जाते, बकरी, भेड़ और शूकरी जब गर्भवती हों अथवा

दूध देती हों या उनका बच्चा छः मास का न होगया हो तब तक न मारी जायें। लोगों के खाने के लिये मुर्गी को खिला पिलाकर मोटी न बनाई जाये। जीते हुए जानवरों को न जलाया जाये। निरर्थक ढंग से अथवा हिंसा के प्रयोजन से जंगल न जलाये जायें। एक जानवर को दूसरा जीवित प्राणी न खिलाया जाये। चतुर्मास की प्रत्येक पूर्णिमा को पुष्य नक्षत्र युक्त पूर्णिमा को, चतुर्दशी, अमावस्या और प्रतिपदा को और वर्ष के उपोसथ दिन में मछलियां मारी और बेची न जायें। प्रत्येक अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, अथवा पूर्णिमा को पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्रों से युक्त दिनों में अथवा चातुर्मास के प्रत्येक उपोसथ दिन में कहीं भी सांड, भैंसा, बकरा, सूअर, अथवा किसी भी बध किए जाने वाले जानवर का बध न किया जाये, पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्र में चातुर्मास की प्रत्येक पूर्णिमा और अमावस्या को और चातुर्मास के शुक्लपक्ष में घोड़े और बैल को दागना न चाहिये। अपने राज्याभिषेक के छब्बीसवें वर्ष में पच्चीसवीं वार मैंने बंदियों को कारागार से मुक्त किया है।

[छठी स्तम्भलिपि]

देवप्रिय प्रियदर्शी राजा कहते हैं—अपने राज्या-

भिषेक के बारहवें वर्ष में प्रजा के लाभ और सुख के लिये मैंने सर्व प्रथम सूचनायें खुदवायीं। मैं यह समझ कर प्रसन्न हूं कि लोग इससे लाभ उठावेंगे। एवं धर्म में अनेक प्रकार से उन्नति करेंगे। इस प्रकार यह सूचनायें लोगों के लाभ और सुख का कारण होंगी। मैंने ऐसे उपाय किए हैं कि जिन से मेरी दूरवर्ती और समीपवर्ती प्रजा के एवं मेरे सम्बन्धियों के सुख की वृद्धि होगी। इसी कारण मैं स्वयं अपने सब कर्मचारियों पर देख भाल रखता हूं। सब पन्थ के लोग मुझ से अनेक प्रकार के दान पाते हैं। परन्तु मैं उनके धर्म परिवर्तन को बहुत अधिक आवश्यक समझता हूं। यह सूचना मैंने अपने राज्याभिषेक के छब्बीसवें वर्ष में खुदवाई है।

[सातवीं स्तम्भ लिपि]

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी कहते हैं—प्राचीन काल में जो राजा लोग राज्य करते थे वे चाहते थे कि मनुष्य धर्म में उन्नति करे, परन्तु उनकी इच्छानुसार मनुष्यों ने धर्म में उन्नति नहीं की। तब देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट् ने कहा, मैंने सोचा कि प्राचीन समय के राजा लोग यह सोचा करते थे कि किस प्रकार प्रजागण आशानुरूप धर्म वृद्धि कर सकते हैं। पर उनकी इच्छानुसार वे धर्मोन्नति

लाभ न कर सके। तब किन उपायों से प्रजागण को धर्मोन्नति में प्रवृत्त करवाया जाए, किन उपायों से उन्हें धर्मपालन में प्रवृत्त किया जाये, किन उपायों से उनके हृदय में धर्म अपनी वृद्धि कर सकता है इस विषय में देवप्रिय प्रियदर्शी राजा इस प्रकार कहते हैं—मैंने धर्म सम्बन्धी उपदेशों को प्रकाशित करने और धार्मिक शिक्षा देने का निश्चय किया है जिस में मनुष्य इनको सुनकर सत्यपथ को ग्रहण करें और अपनी उन्नति करें, मैंने धार्मिक शिक्षाओं को प्रकाशित किया है और धर्म के विषय में अनेक उपदेश दिये हैं जिस में धर्म की बहुत शीघ्र उन्नति हो। मैंने प्रजा को धर्म शिक्षा देने के लिये बहुत से कर्मचारी नियुक्त किये हैं, वे सब कर्मचारी अपने अपने कर्त्तव्य पालन में दत्तचित्त हैं। हज़ारों मनुष्यों पर मैंने रज्जुकों को नियुक्त किया है और आज्ञा दी है कि धर्मयुतों को सहायता दें। देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् ने कहा बड़ी बड़ी सड़कों पर मैंने न्यग्रोध के वृक्ष लगवाए हैं, जिस में कि वे मनुष्यों और पशुओं को छाया दें। मैंने आम के बगीचे लगवाए हैं। मैंने आधे आधे कोस पर कुएं खुदवाए हैं। और अनेक स्थानों पर मनुष्यों और पशुओं के लिए धर्मशालाएं बनवायीं हैं। परन्तु मेरे लिए

यथार्थ प्रसन्नता की बात यह है कि पहले के राजा लोगों ने अनेक अच्छे कार्यों से लोगों के सुख का प्रबन्ध किया है, परन्तु लोगों को धर्मपथ पर चलाने के एकमात्र उद्देश्य से मैं सब कार्य करता हूं। देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् ने कहा—मैंने धर्म महामात्रों को नियत किया है जिस में कि वे सब प्रकार के धर्मप्रचार के कार्य में यत्न करें। सब धर्म के लोगों में सन्यासियों में और गृहस्थों में वे धर्म प्रचार करें। पुजारियों, ब्राह्मणों, सन्यासियों और निर्ग्रन्थ लोगों का ध्यान भी मेरे हृदय में रहा है। और उन सब लोगों में मेरे कर्मचारी कार्य कर रहे हैं। महामात्र लोग अपनी समाज में कार्य करते हैं और धर्म के प्रबन्धकर्त्ता लोग प्रायः सब धर्मों में कार्य करते हैं। देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् ने कहा कि यह कर्मचारी तथा दूसरे कार्य कर्त्ता मेरे हथियार हैं। वे मेरे तथा रानियों के दिये हुए दान का वितरण करते हैं। मैं यह भी जानता हूं कि वे यहां तथा दूसरे प्रान्तों में मेरे लड़के के दिये हुए दान को धर्म कार्यों के साधन तथा धर्मवृद्धि के कार्यों में बांटते हैं। इस प्रकार संसार में धर्म कार्य अधिक होते हैं और धर्म के साधन जैसे दया और दान सत्य और पवित्रता, उपकार और भलाई की वृद्धि होती है।

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी कहते हैं मेरे किये हुए भलाई के अनेक कार्यों को उदाहरण स्वरूप समझ कर लोगों ने सम्बन्धियों और गुरु की आज्ञापालन में, वृद्धों पर दयाभाव रखने में, ब्राह्मणी और श्रमणी के सत्कार करने में, ग़रीब, दुखियों, नौकरों तथा गुलामों का आदर करने में उन्नति की है।

देवताआ के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं—मनुष्यों में धर्म की उन्नति दो प्रकार से हो सकती है (१) स्थिर नियमों के द्वारा (२) उन लोगों के हृदयों में धार्मिक नियमों को उत्तेजित करने के द्वारा। दोनों प्रकार के मार्गों में कठोर नियमों का रखना उचित नहीं है। केवल हृदय को धर्म की ओर प्रवाहित करने से ही लोगों में धार्मिक भावों का विकास होता है। यद्यपि दृढ नियमों के द्वारा पशुबध निषेध आदि उत्तम कार्यों के प्रचारित करने से भी धर्मवृद्धि होसकती है पर धर्म की वास्तविक उन्नति तो जनता के हृदयों में धार्मिक भावनाओं का संचार करने से ही हो सकती है। इसी उद्देश्य से मैंने यह लेख प्रकाशित किया है कि वह मेरे पुत्रों और पौत्रों के समय तक स्थिर रहे। और तब तक स्थिर रहे जब तक कि गगनमण्डल में सूर्य और चन्द्रमा उदय और अस्त होते

रहें । क्योंकि मेरी इन शिक्षाओं पर चलने से मनुष्य दोनों लोकों में सुख प्राप्त करता है। मैंने यह सूचना अपने राज्याभिषेक के सत्ताईसवें वर्ष में खुदवायी है। देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं—जहां कहीं यह सूचना स्तम्भों पर है वहां पर चिरकाल तक स्थिर रहे।

अशोक के समय का कलाकौशल

राजन् राजसुता न पाठयति मां देव्योऽपि तूष्णीं स्थिताः ।
कुब्जे भोजय मां कुमारसचिवैर्नाद्यापि किं भुज्यते ।
इत्थं नाथ शकस्तवैव भवने मुक्तोऽध्वगैः पञ्जरा—
च्चित्रस्थानवलोक्य शून्यवलभावेकैकमाभाषते ॥

अशोक के समय में पत्थर के काम में कारीगरों ने बड़ी उन्नति की थी। पहाड़ी चट्टानों तथा गुफाओं पर के अक्षर खोदने से पहले उन्हें इस प्रकार पालिश किया गया है कि आज भी बीसवीं सदी के इञ्जीनियर उस पर मन्त्रमुग्ध हो रहे हैं और नहीं जानते कि ऐसी पालिश पत्थर पर किस तरह की जा सकती है कि पत्थर भी शीशे की तरह चमक उठे। अशोक के स्तम्भों को देखकर तो आज भी यूरोप और अमेरिका के कारीगर दांतों के नीचे अंगुलियां देते हैं। यह स्तम्भ ४० से ५० फुट लम्बे हैं और वज़न में पचास टन के लग भग। आज इतनी बढी चढी मेशीनरी के दिनों में भी इतनी बड़ी २ आर वज़नी लाटों को बनाना महाभगीरथ प्रयत्न करना है, किन्तु आज से २२ सौ वर्ष पूर्व सम्राट् अशोक के इञ्जीनियरों ने वह काम ऐसी उत्तमता से कर रखा है कि देख २ कर अचम्भा होता है।

सम्राट् ने विहार बनवाए, स्तूप बनवाए तथा महल बनवाए, जिन में पच्चीकारी का काम ऐसा बढ़िया किया गया था कि आज बीसवीं सदी के कारीगरों को भी लजा देता है। कहते हैं कि सुलतान फ़ीरोज़शाह तुग़लक ने अशोक की तीन लाटों को उठवाकर देहली पहुंचवाया था, अम्बाला के ज़िले में तोपरा में जो लाट थी उसे वहां से उठवाकर १५० मील के फ़ासले पर दिल्ली में ले जाने में सुलतान ने जो प्रबन्ध किया था उस का वर्णन उस समय के एक इतिहासवेत्ता (शमसे सीराज) ने लिखा है, जिसे पढ़कर अशोक के ज़माने के इञ्जीनियरों के परिश्रम का कुछ २ अन्दाज़ा लग सकता है। "सुलतान के हुक्म से समीप के रहनेवाले सब आदमियों को बुला लिया गया। उन्हें इस काम के योग्य सब हथियार आदि सामान लाने के लिये कहा गया। सीम्वल की रुई के गट्ठे मंगवाए गए। वह रुई स्तम्भ के चारों तरफ़ लपेट दी गई, और जब नींव के खुदने से स्तम्भ को आहिस्ता से जमीन पर रखा तब धर्ती पर भी उसी रुई का बिछौना बिछा हुआ था। शनैः रुई उतार दी गई और उसे ज़मीन पर पड़ा रहने दिया। उस के मूल में और खुदाई करने से एक बड़ा चौरस पत्थर ज़मीन में

गड़ा हुआ निकाला गया जो उस खम्भे का आधार था। इस के अनन्तर खम्भे के ऊपर अच्छी तरह से बेत और कच्चा चमड़ा लपेट दिया गया जिस से उसे चोट लगने से बचाया जाए। ४२ पहियों की एक लकड़ा गाड़ी बनवाई गई और उसके प्रत्येक पहिए के साथ रस्से बांधे गये। एक २ रस्से पर हज़ारों आदमी लगे तब कहीं बड़ी मुश्किल से खंभे को गाड़ी पर लादा जा सका। प्रत्येक पहिए के साथ ज़बर्दस्त रस्सा बांधा गया और प्रत्येक रस्से को खैंचने के लिए २०० आदमी अर्थात् २ ०×४२ =८४०० आदमी लगाये गये। इतने हज़ार आदमियों के सम्मिलित परिश्रम के द्वारा लाट को जमुना के किनारे पहुंचाया गया। वहां उसके स्वागत के लिए सुलतान स्वयं पहुंचा हुआ था। बड़े २ बेड़े इकट्ठे किये गये जो प्रत्येक ५ से ७ हज़ार मन अनाज का बोझ बर्दाश्त कर सकता था। बड़ी हिकमत से खंभे को बेड़ों पर डाल दिया गया और फ़ीरोज़ाबाद पहुंचाया गया। वहां पहुंचकर बड़ी मेहनत के साथ उसे ज़मीन पर उतारा गया तथा कुश्क तक पहुंचाया गया। वहां पर अच्छे से अच्छे कारीगर मंगवाए गए जिन्होंने पत्थर और चूने की सीढियां बना २ कर क्रमशः खम्भे को खड़ा किया।

सिरे पर बड़े २ मज़बूत रस्सों को बांधकर तथा नीचे भी न धस जाए इसका पूरा २ उपाय करके जैसे तैसे बड़ी कठिनाइयों के साथ खम्भे को सीधा खड़ा किया और उसके नीचे वही चौरस पत्थर रखा।

फ़ीरोज़शाह ने केवल तीन ही खम्भों को उठवाया था जो सब से बड़े खम्भों में से न थे और केवल १।० मील ही उसे ढोहना पड़ा। परन्तु इस से बड़े २ खम्भों को (सब मिलाकर ३० खम्भों को) अशोक के कारीगरों ने इस से भी दूर दूर तक पहुंचाया था। सचमुच ही उस समय की वास्तुविद्या उन्नति के चरम शिखर तक पहुंची हुई होगी। अशोक से पहले लकड़ी के काम ही कारीगर अधिकतर करते थे। आज भी बर्मा, चीन और जापान में लकड़ी के काम ही अधिकतर होरहे हैं। अशोक ने पत्थर के काम को इसलिए पसंद किया कि वह चिरस्थायी होता है। तथा विशेष सुरक्षा के लिए लकड़ी की दीवार के बाहिर पत्थर की दीवार पाटलिपुत्र के चारों ओर बनवाने का भी यही उद्देश्य था। इनके अतिरिक्त मनुष्य घोड़ों तथा हाथियों आदि की बहुत बढिया मूर्तियां उस समय बनाई जाती थीं। मौर्य पालिश तो आज भी दुनियां को हैरान कर रहा है जो पत्थरों को शीशे की तरह

चमका देता था। इन के अतिरिक्त देवी देवताओं की तसवीरें भी बहुत सुन्दर बनायी जाती थीं जो मन्दिरों में रखी जाती थीं। अथवा देवल लोग घरों पर लेजाकर दिखलाते थे और अपनी आजीविका कमाते थे।

समाजिक तथा धार्मिक अवस्था।

आरामाधिपतिर्विवेक विकलो नूनं रसा नीरसा
वात्याभिः परुषीकृता दश दिशश्चण्डातपो दुस्सहः।
एवं धन्वनि चम्पकस्य सकले संहारहेतावपि
त्वं सिञ्चन्नमृतेन तोयद कुतोऽप्याविष्कृतो वेधसा॥

(जगन्नाथ)

सम्राट् अशोक के लेखों से पता लगता है कि ब्राह्मण और श्रमणक दो प्रकार के तपस्वी उस ज़माने में थे जो परस्पर में विभिन्न और विरुद्ध थे। दोनों प्रकार के तपस्वी धार्मिक जीवन व्यतीत करते थे अतः राजा दोनों का सम्मान करता था तथा प्रजा को भी दोनों का ही बराबर सम्मान करने का हुक्म देता था! धार्मिक दृष्टि से मुख्य तीन सम्प्रदाय थे संघ, ब्राह्मण आजीविक, और निर्ग्रन्थ। बौद्ध समूह संघ था, स्वयं अशोक उसी का सदस्य था। इस में शाक्यमुनि के पूर्व भी बुद्धों का होना अशोक के समय में माना जाता था और उनकी भी पूजा की जाती थी। महावीर के अनुयायी निर्ग्रन्थ कहलाते थे जिन्हें जैना भी कहा जाता है। आजीविकों की भी दो किस्में थीं एक ब्राह्मण, दूसरे ब्राह्मणेतर आजीविक

शायद जैनियों में से थे। और ब्राह्मण आजीविक वही थे जिन्हें आज मस्करी वा परिव्राजक कहा जाता है। बौद्ध और जैन भिक्षु श्रमण कहलाते थे, और ब्राह्मण भिक्षु आजीविक कहे जाते थे।

अशोक के मत में धर्म का पालन ही सच्चे ऐहिक और पारलौकिक सुख का देने वाला है इस लिये परमेश्वर के मानने की अशोक तथा दूसरे बौद्धों ने विशेष परवाह नहीं की। यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से ईश्वर की सत्ता का खण्डन भी नहीं किया। कर्म ही बन्धन अर्थात् संसार का हेतु समझा जाता था और भिक्षुओं को कर्मबन्ध से छूटने का उपदेश मिलता था। परमात्मा की भक्ति की ओर ध्यान न देकर प्रायः लोगों में शुभ कर्म, दया, अहिंसा आदि का पालन ही परलोक सुधार के लिए काफ़ी माना जाता था। सामाजिक दशा के बतलाने के लिये खान पान के मसले को पेश किया जासकता है। पर्याप्त संख्या में पशु, पक्षी तथा मछलियां अभक्ष्य मानी जाने लगी थीं। मध्य देश वालों के अत्यन्त रुचिकर मोर का खाना भी बंद होगया।

स्त्रियों के पर्दे का उस समय भी रिवाज था, जो लोग समझते हैं कि पर्दा मुसलमानों के साथ भारत में

आया वह ग़लती पर हैं। वास्तव में भास, कालीदास, वात्स्यायन के ग्रन्थों में पर्दे का रिवाज पाया जाता है। अशोक भी अपने अवरोधन का ज़िक्र करता है। जिसका अन्तःपुर से अभिप्राय है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में अवरोधन के बनाये जाने तथा स्त्रीजगत् को बाहिर वालों से सुरक्षित रखने का पूर्णतया विधान है। रामायण में भी पर्दे के निशान हैं, परन्तु सब से पहले जो पर्दे के हक में प्रमाण मिलता है वह पाणिनि के अष्टक में से है। जहां स्त्रियों को असूर्यश्य या लिखा है, तथा काशिका कार अर्थ करता है कि रानियां, जिस से प्रकट होता है कि रानियों को इतने पर्दे में रखा जाता था कि सूर्य भी उन्हें न देखपावे।

अशोक की समकालिक स्त्रियां भी धर्मभीरु थीं तथा मिथ्या भ्रमों में विश्वास करती थीं। ब्राह्मणों का वर्णन तो इन शिलालेखों में मिलता है परन्तु क्षत्रिय और वैश्यों का कोई जिक्र नहीं। शूद्र भी शायद दासों और ग़ुलामों से ही अभिप्रेत थे। इ लिए मालूम होता है कि उस समय जातें बेशक थीं परन्तु शायद वर्ण नहीं थे। मनुष्य और पशुओं की चिकित्सा का प्रबन्ध था। मनुष्यों के लिए हस्पतालों तथा पशुओं के लिए पिंजरा

पोलों का विधान होता था। अशोक की कोशिश और उदारता के कारण दूर २ तक ओषधियों को यहां से भेजा जाता था, जिसका तात्पर्य यह है कि दवाइयों को यहां पर अच्छी तरह तय्यार करने तथा ओषधियों को पैदा करने की प्रथा थी, यहां तक कि सर्वत्र यहां से भेजी जाती थीं।

ब्राह्मी और खरोष्ठी दोनों प्रकार की लिपियों का उस समय रिवाज मालूम होता है। ब्राह्मी बाईं ओर से तथा खरोष्ठी दहिनी तरफ़ से लिखी जाती थी।

मौर्यवंश से सम्बद्ध मुख्य २ घटनाओं का नक्शा

ई० पू०	अशोक के अभिषेक के वर्ष	घटना	प्रमाण
३२७-		अलक्षेन्द्र का भारत पर आक्रमण	एरियन
३२५		युवक चन्द्रगुप्त अलक्षन्द्र से मिला	प्लूटार्क
३२५		क्षत्रप फ़िलिप भारतीयों द्वारा मारा गया। (Eugemus) यूजीमस तथा तक्षशिला के राजा के सुपुर्द प्रदेश हुए जिसका नाम था (Omphis) आम्भि।	
३२३		अलक्षेन्द्र की मृत्यु बाबलदेश में	एरियन
३२३-२२		चन्द्रगुप्त के नेतृत्व में भारतीय विद्रोह।	
३२१		चन्द्रगुप्त का सिंहासन पर आरोहण।	जस्टिन
३२१		बाबल का देश दुबारा बटवारे में सेल्यूकस निकेटर को मिला।	
३११-६		सेल्यूकस का चन्द्रगुप्त से पराजित होना।	स्ट्राबो

ई० पू०	अशोक के अभिषेक के वर्ष	घटना	प्रमाण
३०५		भारतीय प्रदेशों तथा अफ़गानस्थान के बड़े भाग को चन्द्रगुप्त के प्रति सेल्यूकस का सौंपना। राजदूत मेगस्थनीज़ का पाटलिपुत्र में आना।	
२९७		बिन्दुसार अमित्रघात का सिंहासनारोहण।	
२९६		सेल्यूकस के राजदूत डेमेकस का पाटलिपुत्र में आकर रहना।	स्ट्राबो
२७४		अशोकवर्धन का सिंहासनासीन होना।	
२६९	प्रथम	अभिषेक (अशोक का)।	
२६८	दूसरा		
२६७	तीसरा		
२६६	चौथा		
२६५	पांचवां		
२६४	छठा		

ई० पू०	अशोक के अभिषेक के वर्ष	घटना	प्रमाण
२६३	७वां		
२६२	८वां		
२६१	९वां	कलिंग विजय।	पहाड़ी शिलालेख १३
		अशोक का बौद्ध उपासक होना।	गौण प. शि. १.
२६०	१०वां		
२५९	११वां	बौद्धसंघ में अशोक का प्रवेश।	पहा. शि. ८
		शिकार खेलने का प्रतिषेध करना।	गौ.प.शि १ प. शि. १३
		धार्मिक यात्रा का जारी करना।	
		बौद्ध प्रचारकों का भेजना।	
२५८	१२वां		
२५७	१३वां	पहाड़ी शिलालेख नम्बर ३ और ४ का खुदवाना।	प. शि. ३. ४.
		१. २ नम्बर की गुफाओं का	बराबर

ई० पू०	अशोक के अभिषेक के वर्ष	घटना	प्रमाण
		ब्राह्मण आजीविकों के प्रति अशोक का दान (स्थान बराबर)	गुफालेख
		धर्म के बढ़ाने तथा प्रचारने के लिए पञ्चवार्षिक परिषदों का होना स्थिर करना।	प.शि.३.
२५६	१४वां	चौदह पहाड़ी शिलालेखों का खुदवाना। कलिंग के सीमाप्रान्त वालों के प्रति प्रज्ञापन (नं० २) पृथक्।	पहा.शि.५ सीमाप्रान्तिक लेख
		धर्म महामात्रों की नियुक्ति।	
२५५	१५वां	अशोक ने कपिलवस्तु के समीपवर्ती कनकमुनि बुद्ध के स्तूप को दुबारा बढाया।	निग्लीव स्तम्भलेख
२५४	१६वां	कलिंग के प्रान्तिक शासकों के प्रति आज्ञा का छपवाना (नं० १ पृथक्)	
२५३	१७वां		

ई० पू०	अशोक के अभिषेक के वर्ष	घटना	प्रधान
२५२	१८वां	गौणशिलालेखों (पहाड़ी) का खुदवाना। तथा भबर लेख।	गौण पं. शि. १.
२५१	१९वां		
२५०	२०वां	गुफा नं० ३ को ब्राह्मण आजीविकों के प्रति दान करना।	भरावर नं. ३ गुफालेख
२४९	२१वां	बौद्ध तीर्थों की यात्रा, लुम्बिनी उद्यान की लाट तथा कनकमुनि के स्तूप का बनाना।	निग्लीव वा रुम्मिनदेई के स्तंभलेख
२४८	२२वां		
२४७	२३वां		
२४६	२४वां		
२४५	२५वां		
२४४	२६वां		
२४३	२७वां	अशोक ने स्तम्भ लेख ६ खुदवाया।	स्तंभलेख६
२४२	२८वां	सात स्तम्भशिलालेखों का खुदवाना।	स्तंभले.७

ई० पू०	अशोक के अभिषेक के वर्ष	घटना	प्रधान
२४१	२९वां		
२४०	३०वां	गौण स्तम्भलेखों का लिखवाना	
२३९	३१वां		
२३८	३२वां		
२३७	३३वां		
२३६	३४वां		
२३५	३५वां		
२३४	३६वां		
२३३	३७वां		
२३२	३८वां	अशोक की मृत्यु ।	महावंश
		दशरथ का सिंहासन पर बैठना	नागा.गुफा
		नागार्जुनी गुफाओं का दान ।	लेख
१८८		मौर्यवंश की समाप्ति ।	वायुपुराण

इतिहास में अशोक का स्थान ।[1]

करोति योऽशेषजनातिरिक्तां सम्भावनामर्थवतीं क्रियाभिः ।
संसत्सु जाते पुरुषाधिकारे न पूरणी तं समुपैति संख्या ॥

(भारवि)

इतिहास में सम्राट् अशोक का स्थान जानने के लिए आवश्यक है कि हम उसके जीवन काल की घटनाओं का विचार करें तथा देखें कि उसने कौनसा उद्देश्य अपने सामने रखा हुआ था । अशोक के शिलालेखों से इस बात का परिचय भली भांति लग जाता है कि उस का लक्ष्य न केवल अपने साम्राज्य के मनुष्य प्रत्युत दुनियां भर के मनुष्यमात्र का ऐहिक और पारलौकिक भला करना था । यही नहीं यावत्प्राणिमात्र का उपकार करना उसका लक्ष्य बन गया था । यही कारण था कि सम्राट् ने न केवल अपने साम्राज्य भर में प्रत्युत सीमा-प्रान्तों के परप्रदेशों तथा यवन आदि दूसरे राजाओं के राज्यों में सायेदार सड़कें बनवाईं और फलदार वृक्ष लगवाए तथा सर्वत्र मनुष्यों और पशुओं की चिकित्सा के लिए औषधालय खोले, और जहां जो ओषधि नहीं मिलती थी उसे वहां पहुंचाया तथा वहीं उसे पैदा करने का यत्न किया । सम्राट् ने अपनी प्रजा को ही नहीं सीमा-

प्रान्तों की स्वतन्त्र प्रजाओं को भी उसने पुत्रवत् समझ कर उनकी भलाई करने का यत्न किया। यहां तक कि उसने सीमाप्रान्ती लोगों को अभय दान देते हुए उन्हें विश्वास दिलाया तथा वचन दिया कि वे सदा भलाई की ही आशा उस से रखें। अशोक ने धर्म के उपदेश द्वारा आध्यात्मिक उन्नति का रास्ता भी अपनी प्रजा के लिए ही नहीं प्रत्युत दूर दूर की देशान्तरवासिनी प्रजा के लिए भी खोल दिया, और सचमुच ही उसे अपने इस काम में बड़ी सफलता हुई। क्योंकि भारत और सिंहलद्वीप में ही नहीं प्रत्युत २०० ई. पू. से पहले ही चीन में भी बुद्ध धर्म का प्रचार हो गया। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि पश्चिमी एशिया ने भी बुद्धमत स्वीकार किया हो, तो भी इस में सन्देह नहीं कि ईसाई धर्म पर बौद्ध धर्म का काफ़ी प्रभाव पड़ा, और निस्सन्देह मनुष्य समाज के भ्रातृभाव का सिद्धान्त ईसाइयों ने बौद्धों से ही लिया था।

अब हम यह विचार करेंगे कि इतिहास में अशोक का स्थान कौनसा है। विद्वानों ने प्राचीन समय के सम्राटों—ईसाई, मुसल्मान, पारसी, पौरस्त्य और पाश्चात्य-के साथ अशोक की तुलना की है, परन्तु अशोक का

गौरव किसी की अपेक्षा भी घटा नहीं । उदाहरण के तौर पर अशोक की तुलना रोमन सम्राट् कान्स्टेन्टाईन (Constantine) के साथ दो अंशों में की जाती है। (१) प्रो० (Rhys Davids) रीस डेविड का कथन है कि जिस तरह कान्स्टेन्टाईन की आर्थिक सहायता से ईसाई धर्म में आध्यात्मिक उन्नति का लोप हुआ उसी तरह अशोक की दान दक्षिणादि का स्वीकार करना बौद्धधर्म के भारतवर्ष से दूर हो जाने का कारण बना। परन्तु इस बात में सचाई मालूम नहीं होती । क्योंकि बंगाल आदि में अब भी बौद्ध धर्म विद्यमान है। इसलिये प्रथम तो यही कहना ग़लत है कि वह भारतवर्ष की भूमि से उठ गया है। इस में सन्देह नहीं कि बौद्धधर्म अच्छी स्थिति में नहीं है, परन्तु इस में जो हानि आई वह बारहवीं सदी के बाद अर्थात् अशोक के बाद १००० वर्षों से कुछ अधिक समय बीतने के बाद आई। इसलिये अशोक को उस हानि के लिये उत्तरदाता नहीं ठहराया जा सकता। अशोक ने किसी भी बुरे उद्देश्य से कभी भी संघ को सहायता दी हो इसका एक भी तो उदाहरण नहीं मिल सकता। बौद्धधर्म का ह्रास ई. सन् ३५० में गुप्त राजाओं के समय में होना शुरू हुआ न कि अशोक

के समय में।

(२) रोमन सम्राट् के साथ तुलना करते हुए कहा जाता है कि दोनों ने अपने २ धर्म के प्रचार के लिए आर्थिक सहायता की। परन्तु वे इस बात को भूल जाते हैं कि बौद्ध सम्राट् ने जिन हालात में बौद्ध धर्म की सहायता की वे उन से नितान्त भिन्न थे जिन में रोमन सम्राट् ने ईसाई धर्म की सहायता की थी। रोमन सम्राट् के पहले ही ईसाई धर्म उन्नति कर चुका था, किन्तु बौद्ध सम्राट् ने उस समय संघ की सहायता की थी जब कि उसे सहायता की परमावश्यकता थी। जिस समय अशोक बौद्ध संघ का नेता बना उस वक्त तक बौद्धधर्म ने अभी कोई ख़ास उन्नति नहीं की हुई थी। कान्स्टैंटाईन नफ़ा नुकसान सोचकर पग धरने वाला आदमी था, चालाक था। भ्रममूलक मिथ्या विश्वासों में ग्रस्त था, बहुधा क्रूरता के कार्य कर देता था, और सिड़ी था, वह एक ही दूरदर्शिता के काम की बदौलत महापुरुष कहलाया है। परन्तु अशोक की बात ही निराली है। वह विचारवान् था, दया का समुद्र था, उन्नत विचारों वाला था, परिश्रम शील था, मन वचन कर्म द्वारा एक उद्देश्य को पालने वाला था, और आश्चर्य में डालने वाले उत्तम साधनों से सम्पन्न था।

रोमन सम्राट् राजनैतिक चाल के लिए सहिष्णुता को धारण करता था। किन्तु अशोक की सहिष्णुता वास्तविक थी। रोमन सम्राट् पिछले दिनों में ईसाई धर्म से विरक्त भी हो गया था। परन्तु अशोक का अपने धर्म के लिए अनुराग तात्त्विक था। अच्छे से अच्छे दिनों में भी रोमन सम्राट् के धर्म को एक 'खिचड़ी धर्म' ही कहा जा सकता है। परन्तु अशोक का धर्म अचल और स्थिर तथा सुनिश्चित था। जिसका पालन वह असाधारण भक्ति और अनुराग से यावज्जीवन करता रहा।

एक और रोमन सम्राट् के साथ अशोक की तुलना की जाती है, जिसका नाम था Marcus aurelius Antoninus मार्कस ओरेलियस ऐन्टोनाइनस। इस में सन्देह नहीं कि उसका व्यक्तिगत जीवन अत्यन्त धार्मिक और उच्च था और उसका मानसिक विकास शायद अशोक की अपेक्षा भी बढ़ा चढ़ा था। परन्तु वह भी उद्देश्य की महत्ता और तदनुरूप अनुष्ठान के लिए उत्साह की मात्रा में अशोक का मुकाबिला नहीं कर सकता। इस में सन्देह नहीं कि उसे भी मनुष्य समाज के साथ गहरी हमदर्दी थी और मानव समाज के साथ प्रेम करना ही उसका धर्म था। परन्तु उसकी दृष्टि में ईसाई धर्म रोम की समृद्धि का

विघातक था इसलिए उसने उसे कुचलने के लिए पूरी कोशिश की। मार्कस की नज़र में रोम का वैभव ही सब कुछ था, बाकी सब कुछ उसके मुकाबिले पर हेच था। इस लिए वह रोम के वैभव की रक्षा के लिए ईसाई धर्म के नेताओं को हर तरीके से दबाता रहा। परन्तु बौद्ध सम्राट् ने हृदय को विशाल करके और अलौकिक उदारता को धारण कर के मनुष्यमात्र के कल्याण की चिन्ता की, और साम्राज्य में फैले हुए सभी मतों का समान रूप से आदर और प्रोत्साहन किया। मनुष्य समाज के किसी अंग को अमानुष अत्याचार से पीड़ित ही नहीं किया प्रत्युत प्राणिमात्र के मंगल की कामना उसने की।

(Alfred) ऐल्फ्रेड, (Charlemagne) शार्लिमेन (Omar Khaliff 1.) प्रथम खलीफ़ा उमर आदि अनेक राजाओं के साथ अशोक की तुलना की जाती है। इस में सन्देह नहीं कि वे भी अशोक की तरह पराक्रमी वीर तथा उत्तम शासक थे। परन्तु अशोक के साथ तुलना के लायक वही आदमी हो सकता है जिस ने मनुष्य समाज का ऐहिक और पारलौकिक भला करने में परिश्रम किया हो। क्योंकि सम्राट् अशोक के जीवन का यही मुख्य काम था। हां सम्राट् अकबर अशोक से टक्कर खा सकता है। उसने

भी मानव समाज की भलाई करने तथा उसे सुखी करने के लिए परिश्रम किया था। धार्मिक सहिष्णुता उस में भी बहुत बढ़ी चढ़ी थी। सच्चाई की तलाश में वह शिया, सुन्नी, पारसी, ईसाई, जैनी, हिन्दु, बौद्ध, यहूदी सभी के शास्त्रार्थ करवाता था और उन में मध्यस्थ बना करता था। वह चाहता था कि इन उपायों से सच्चाई के तालों की चाबी ढूंड सके जो कि खोयी जा चुकी थी। परन्तु अकबर एक नीतिज्ञ था और दुनियांदार था। उसके लिये राज्य की फ़िक्र सर्वोपरि थी। क्योंकि जब उसने मुसलमानों को विरुद्ध होते देखा तो झट शास्त्रार्थों के सिलसले को बंद कर दिया। बंगाल के मुसलमानों के बलवा खड़ा कर देने मात्र से उसने ईसाई पादरियों की एक न सुनी। उसकी सहिष्णुता भी उतनी विस्तृत न थी, क्योंकि जूंहीं इलाही मत खड़ा हुआ उस ने उन के मानने वालों को पकड़ लिया और कैद कर के सिन्ध तथा अफ़गानिस्तान में भेज दिया, जहां वह घोड़ों के विनिमय में बेचे गये। अकबर को धार्मिक गवेषणा करते हुए यश पाने की भी हवस थी। धर्म के लिए उस के सीने में वह आग न थी, दिल में वह जोश न था जो बौद्ध सम्राट् में पाये जाते थे।

विदेशी विद्वानों की दृष्टि में (Alxander) अलक्षेन्द्र, (Ceasar) सीज़र, (Napolean) नेपोलियन दुनियां के सब से बड़े राजा माने जाते हैं। शायद वे अशोक की अपेक्षा भी बढ़िया योधा वा शासक हों। परन्तु योधा वा शासक होना और बात है, महापुरुष होना दूसरी बात है। परन्तु हाल में ही (H. G. Wells) वैल्ल साहब ने अपनी पुस्तक (The outline of History) 'इतिहास का ढांचा' में इन के सम्बन्ध में विचार करते हुए लिखा है कि पहला दुर्व्यसनी था। और शराब के नशे में ही ३३ वर्ष की नौजवानी में दुनियां से कूच कर गया। दूसरा इतना स्त्रीलम्पट था कि ५४ वर्ष की अवस्था में भी क्लियोपेट्रा (Siron Cleopatra) के हाव भाव में ही सारा २ साल गुजार देता था। तीसरा पक्का स्वार्थी था। अत्यन्त सुन्दर अवसर के उपस्थित होते भी उस ने जन समाज की सेवा को अपना लक्ष्य न बनाया प्रत्युत अपनी अभिवृद्धि का ही उसे सर्वोपरि ख्याल बना रहा। दुर्व्यसनों से कोसों दूर रहने वाले, धर्म और त्याग की मूर्ति सम्राट् अशोक से भला इन लोगों का मुकाबला हो सकता है ? कदापि नहीं।

अशोक के साथ तुलना का अधिकारी अगर कोई व्यक्ति है तो वह है सेंट पाल (St. Paul) जिस ने ईसाई

धर्म में से भेद भाव को दूर करते हुए परमात्मा की नज़रों में सब मनुष्यों की समानता का सिद्धान्त जारी किया था। अशोक ने भी जब बुद्ध धर्म की सेवा आरम्भ की तो उस समय वह परिमित स्थान में प्रचलित था, उसे उस ने विश्वव्यापी बनाते हुए ऊंच नीच के भेद को दूर किया तथा सब मतों में सहिष्णुता और समता उत्पन्न की। हां एक विशाल साम्राज्य का अधिपति होने के कारण थोड़े समय में जो महती सेवा अशोक कर सका वह पाल नहीं कर सकता था। बौद्ध धर्म में देखें तो अशोक का दर्जा भगवान् बुद्ध से दूसरा ही है।

अशोक की धार्मिक नीति का भारत पर प्रभाव ।

साकं ग्रावगणैर्लुठन्ति मणयस्तीरेऽर्कविम्बोपमाः ।
नीरे नीरचरैः समं स भगवान्निद्राति नारायणः ॥
इत्थं वीक्ष्य तवाविवेकमपि च प्रौढिं परामुन्नतेः ।
किं निन्दान्यथवा स्तवानि कथय क्षीरार्णव त्वामहम् ॥

(जगन्नाथ)

अशोक सम्बन्धी लेख को समाप्त करने से पूर्व हम यह विचार करना अत्यावश्यक समझते हैं कि भारत पर सम्राट् की धार्मिक नीति का क्या प्रभाव पड़ा । भारत को उस से लाभ हुआ या हानि हुई । यह बात सब को स्वीकार करनी पड़ती है कि एकच्छत्र राज्य के होजाने से तथा साम्राज्य के सब प्रदेशों में अपने धार्मिक सिद्धान्तों के पहुंचाने की इच्छा से सम्राट् अशोक को पालीभाषा का आश्रय लेना पड़ा । भिन्न २ प्रान्तों की भाषा यद्यपि भिन्न २ थी तो भी सम्राट् के सिद्धान्तों के समझने समझाने के यत्न में सब ने एक सर्वसाधारण के योग्य भाषा की आवश्यकता का अनुभव किया । प्रान्तों का पारस्परिक मेल बढ़ चुका था । अपने २ विचारों को प्रकट

करने के लिये एक भाषा का होना अनिवार्य रूप से आवश्यक हो गया। निदान पालीभाषा को भारत भर की भाषा बनने का गौरव प्राप्त हुआ। और उसी के द्वारा लौकिक तथा शास्त्रीय प्रयोजन सिद्ध होने लगे। दूसरा लाभ यह हुआ कि भारतीय दस्तकारी ने एकदम बहुत बड़ी तरक्की कर डाली। पहले लकड़ी का काम ही यहां विशेष होता था। पत्थर का काम थोड़ा था। परन्तु जब सम्राट् के दिल में धार्मिक प्रचार की धुन समायी, उसे पत्थरों से लाभ उठाने का भी ध्यान आया। फलतः बड़े २ स्तम्भ स्तूप आदि बनने शुरू हो गये और पत्थरों को खोदकर शानदार मन्दिर बनने लग गये जो क्रमशः बनते २ विशेष सुन्दर हो गये और बहुत भारी संख्या में तय्यार हो गये और आज दुनियां के लिए आश्चर्य जनक वस्तुओं में से हैं। इन दो लाभों के अतिरिक्त जीवधारी प्राणिवर्ग मात्र में जो भ्रातृभाव का बोध अशोक ने उपजाया उसका भी अनेक स्थलों पर वर्णन किया जा चुका है।

अशोक के समय में भारतीयों की मानसिक रुचि कुछ सुव्यवस्थित तथा ऐहिक और पारलौकिक उन्नतियों के ठीक बीचों बीच तुली हुई सी मालूम देती है। परन्तु

अशोक के धार्मिक उत्साह ने उस में खलबली मचा दी और फलतः बहुत जल्दी ही ऐहिक उन्नति के भाव को पारलौकिक उन्नति के भाव ने ग्रस लिया। लोगों को दुनियां की चिन्ता कम रहने लगी, परलोक की ही चिन्ता विशेष रूप से उन्हें घर किये रहने लगी। दूसरे शब्दों में अशोक के धार्मिक आन्दोलन का जनता पर प्रभाव यह हुआ कि सांसारिक उन्नति की ओर से वह बहुत कुछ विमुख हो गई। मैक्समूलर का कथन है कि भारत वर्ष दार्शनिकों का देश बन गया। ब्लूम फील्ड का कहना है कि जनता में यही भाव फैल गया कि जीवन एक यात्रा है तथा मुक्ति पाना ही उसका एकमात्र लक्ष्य है। फलतः व्यक्तिगत जीवन की प्रधानता ने ज़ोर पकड़ा, और समष्टि जीवन का भाव बिल्कुल शिथिल हो गया। इसका यह अर्थ नहीं कि भारतीयों ने राजनीति के क्षेत्र में कोई उन्नति की ही नहीं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र की विद्यमानता में ऐसा कहना निरा कुफ़र है। कौटिल्य के अर्थ शास्त्र के अध्ययन से ही कम से कम सात और आचार्यों का पता लगता है जिन्होंने राजनीति सम्बन्धी ग्रन्थ लिखे, परन्तु कौटिल्य के अर्थशास्त्र ने उन सब को मात कर दिया। हां कौटिल्य के बाद राजनीति की विद्या यहां से

एकदम उठ गई सी मालूम पड़ती है। क्योंकि कामन्दक नीतिसार के सिवाय दूसरा ग्रन्थ राजनीति पर लिखा गया दृष्टिगोचर नहीं होता। स्वयं कामन्दक नीतिसार भी स्वतन्त्रग्रन्थ नहीं है कौटिल्य के अर्थशास्त्र का संक्षेप है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से पता लग रहा है कि उस समय चार विद्याओं में काफ़ी उन्नति हो चुकी थी। आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति।

आन्वीक्षिकी = दर्शन।
त्रयी = धार्मिक प्रक्रिया।
वार्ता = अर्थशास्त्र।
दण्डनीति = राजनीति।

यह चारों विद्याएं उन्नत अवस्था को पहुंच चुकी थीं। बृहस्पति ने तो यहां तक भी कह डाला कि त्रयी विद्या एक पवित्र धोखा है। एक और आचार्य ने दण्डनीति को ही सब कुछ माना, और उसी एक को विद्यास्थान स्वीकार किया। इस लिए यह नहीं कहा जा सकता कि भारतीयों ने केवल दर्शन और धर्म में ही उन्नति की थी, राजनीति में नहीं। हां कौटिल्य के बाद राजनीति की उन्नति एक दम रुक गई। और लोगों की प्रवृत्ति केवल धर्म और दर्शन में ही विहार करने लगी।

सम्राट् अशोक को साम्राज्य भर में एक जातीयता के भाव का उद्बोध करा सकने का बड़ा अच्छा अवसर था। एक-च्छत्र राज्य तो बन ही चुका था, सारा भारत आर्य हो ही चुका था। पाली भी सब प्रान्तों में साधारण बोल चाल में आने लगी थी, इस लिए भाषा भी एक हो ही गई थी। अगर अशोक की रुचि एक मात्र धर्म की ओर न झुक जाती और वह बिम्बसार आदि की राज्यवर्धनी नीति का आलम्बन करता तो दक्षिण के चोल, पाण्डय, केरल तो साम्राज्य में मिल ही जाते। उत्तर पश्चिम के भी बड़े प्रदेशों को जीतकर एक विश्वव्यापी साम्राज्य बन सकता था, जो रोमन साम्राज्य से कहीं बढ कर होता। कलिंग विजय के बाद चन्द्रगुप्त समान राजा अपनी विजयी सेना द्वारा अन्यान्य देशों को जीतकर एक अश्रुत पूर्व विस्तृत साम्राज्य की स्थापना कर डालता। परन्तु अशोक ने तो शस्त्र द्वारा विजयों को घृणा की दृष्टि से देखना आरम्भ किया। बौद्ध धर्म को भी जैनियों के रंग में रंग कर अशोक ने अपने जीवन का उद्देश्य धर्म विजय बना लिया। और शस्त्र विजयों से एकदम पराङ्मुख हो गया। फल यह हुआ कि उस के मरने के २०, २५ वर्ष बाद ही बेक्टीरिया के यूनानियों ने उत्तर पश्चिम में हमले करने शुरू कर दिए

और विशाल मौर्य साम्राज्य को नष्ट भ्रष्ट करना आरम्भ किया। यही नहीं, शक, पल्हव, कुशान, हूण, गुर्जरादि के लिए भारत में घुस आने का रास्ता खोल दिया। ईसा की ६ठी सदी तक हमें यही अवस्था मिलती है। हां शुङ्ग और गुप्त राजाओं ने कुछ भारतीय साम्राज्य को थोड़े समय के लिये अवश्य संभाला था। यह भी ठीक है कि यह बाहिर से आये हुए लोग शीघ्र ही हिन्दु भी बन गए, और हिन्दू धर्म ने इनको अपने अन्दर हज़म कर लिया, किन्तु यह भी ठीक है कि मुसलमानों के आने तक इन्हीं लोगों के हाथों में राज्य की बागडोरें थीं। हिन्दूराजनीति अपनी स्वाभाविक मौत से देर हुई मर चुकी थी। और विशाल मौर्य साम्राज्य अशोक के आंख मीचते ही नष्ट भ्रष्ट होगया।

हां अशोक की धार्मिक नीति ने धर्म को विश्वव्यापी बनाया तथा उस में कोमलता वा दयालुता के बीज को बोया। भारत में सांसारिक उन्नति आर्थिक, व्यापारिक, कलाकौशल सम्बन्धी तरक्की बेशक रुक गई। तो भी सम्राट् अशोक की बदौलत पूर्वी देशों को जहां धर्म और दर्शन के साथ भारतीय सभ्यता में दीक्षा मिली वहां यहूदियों तथा प्रारम्भिक और बीच युग के ईसाइयों पर बौद्धधर्म का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।

उपसंहार

पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।

भ्रातः कष्टमहो महान् स नृपतिः सामन्तचक्रं च तत्
पार्श्वे सा च विदग्धराजपरिषत्ताश्चन्द्रबिम्बाननाः ।
उद्वृत्तः स च राजपुत्रनिवहस्ते वन्दिनस्ताः कथाः
सर्वं यस्य वशादगात्स्मृतिपथं कालाय तस्मै नमः ॥

भर्तृहरिः ।

२३२ ई० पू० के लगभग ४१ वर्ष के निरुपद्रव राज्यभोग के बाद सम्राट् अशोक वर्धन ने यशरूपी शरीर को पीछे छोड़ते हुए महाप्रस्थान किया । विष्णुपुराण से पता लगता है कि उसके बाद क्रमशः सुशश, दशरथ, सङ्गत, शालिशुक, सोमशर्मा, शशधर्मा, और बृहद्रथ सिंहासन पर बैठे । परन्तु कोई भी विशेष प्रतिभाशाली तथा प्रभावयुक्त राजा न था । अन्तिम राजा बृहद्रथ को उसके सेनापति पुष्यमित्र ने धोखे से मार डाला, और एक तरह से मौर्य साम्राज्य का अन्त कर डाला । केवल राजपूताना मालवा आदि में कुच्छ दिनों तक और अशोक के वंशजों का राज्य रहा । विष्णुपुराण के अनुसार चन्द्रगुप्त से लेकर बृहद्रथ तक १० मौर्य राजाओं ने